कला का अनुवाद

लेखक की अन्य कृतियाँ

- श्रीकृष्णार्जुन युद्ध
- हिमकिरीटनी
- साहित्यदेवता
- हिमतरंगिनी
- माता
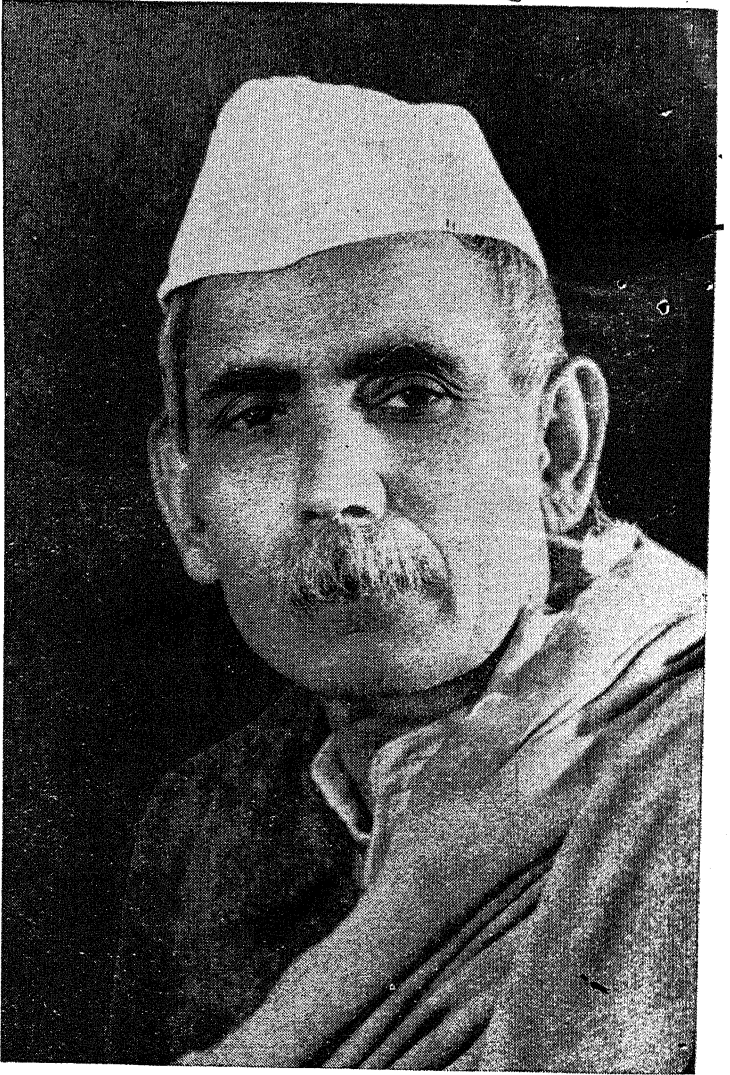
माखनलाल चतुर्वेदी

कला का अनुवाद

[कहानी-संग्रह]

माखनलाल चतुर्वेदी

गोरखपुर
विश्वविद्यालय प्रकाशन
१९५४

क्रम

कच्चा रास्ता

गाड़ी ढचर-ढचर चली जा रही थी। देहाती रास्ता था। कच्चा। तिस पर पहाड़ी। पक्की सडकों पर एक दुख। सड़क पर पिटे हुये पत्थर, गाडी के पहिये के लोहे के पट्टे के सघर्ष से, कुहराम-सा मचाते है। मिट्टी के कच्चे रास्ते पर चलनेवाले चक्के, ऐसे जाते है, मानों मिट्टी पर बिछी हुई मखमल पर से गुजरते हों। पेट का पानी भी नहीं हिलता। और पक्की सड़कों पर तो बैल-गाडी या घोडा-गाड़ी के राहगीर के पेट के जोड मानो उछल-उछल कर खौलने लगते है। शायद इसीलिये सघर्ष को गति का जनक, और सुविधा को मरण-समाधि बताया जाता है। खैर। किन्तु कच्चे रास्ते मे एक ही खराबी। खन्दक, खाई, गढा, टीला, ऊँचक नीचक जगहे, बेहूदा घुमाव, और 'ऐचक बेचा' चढाव आदि। बैल जब धीरे चलने लगते है, तब हॉकने-वाला टट्-टट् की एक ऐसी आवाज करता है, जिसे हॉकने की आवाज ही कहते है। किन्तु अपनी सम्पूर्णता का दावा रखकर भी, वर्णमाला, उस स्वर के लिखने मे असमर्थ मालूम होती है। हॉ तो वह स्वर, वह टट्-टट्, जुते बैलो के धीमा पडते ही, उन्हे मानो शीघ्र चलने की याद दिलाता है, और यह चेतावनी भी है, कि अब भी न चेते, तो हॉकनी

का सटाका पडा। और तिस पर हाँकनी की वह 'आर'। वह कीला, जो बैलो के हाँकने के लिये, लकडी के डंडे पर निकला रहता है! यह अंग्रेजी के 'आर' अक्षर की आकृति नही है। यह तो उर्दू का 'अलिफ', अंग्रेजी का 'आई' और हिन्दी के 'आ' की मात्रा है। इसका नाम न जाने किसने 'आर' रखा। मालूम होता है, बैलों के कांधो पर रखे-रखे घिस जानेवाले जूड़े की तरह इस औजारिन का भी आधा भाग घिस गया। चूकि, बैल के कूले पर गड़ते ही, दयालु भारतवर्ष के धर्म-प्राण लोगों का नाम-सा लिखती हुई, जो रक्तधारा निकलती है, वह, उस कीले के, बैल के चमड़े के आरपार होने के कारण ही निकलती है। अत इसका नाम किसी दिन 'आरपार' ही रहा होगा। आर नही।

इसी तरह दिहाती कच्चे रास्ते के सुख-वस्तु यात्रियो के लिये, जो सकट-सप्तक टीलो आदि का मैने गिनाया है, उनमे कुछ तो मानो कच्चे रास्ते की टट्-टट् है, जिससे यात्री को सजगता और सावधानी दी जाती है। और कुछ कठिन है, आरे। किन्तु प्रकृति कितना भी कहो, तो क्रूरता मे मनुष्य से बाजी नही ले जा सकती। मनुष्य की 'आर' तो बस मनुष्य की ही आर है। उसकी दृष्टि मे 'आर'। उसकी इच्छा मे 'आर'। उसकी महत्वाकाक्षा मे 'आर' और उसकी हाँकनी में तो आर है ही!

तुक पर तुक यों मिली कि गाडी ढचर-ढचर चली जा रही थी। रामधन गाड़ी हाँक रहा था। मै गाडी मे बैठने का कष्ट उठाये हुये था! बैल काँधे के बल गाड़ी घसीटते, और पाँवो के बल दौडते थे। रामधन आँखो के बल झुककर कभी चकील (गाडी के चक्के की कील), कभी लोहे के पट्टे और कभी जूडी के पास लगे धुरकीले को देखता। गो-माता के दोनों पुत्रों को कभी ललकार से, कभी लात से, और कभी हाँकने की लाठी से मारता जाता। मै भी बेकार न था।

बैलो के पैर, और रामधन का हाथ 'चाल' था, तो मेरा सिर चल रहा था। और जिस तरह गाड़ी के रास्ते मे ऊँचे-से-ऊँचे टीले, नीची-से-नीची खाइयाँ थी, वैसे ही मेरे सिर के चलने के रास्ते मे मनोविकारों के सकट पड रहे थे। अन्तर इतना ही था कि रामधन के जगली रास्ते मे मार्ग मे पत्तो के तोरण लगे थे, सारस की कतारे चलते-फिरते तोरण चला रही थी—और मुझे बडा अचरज हुआ, जब प्रकृति के कौशलो पर, मेरी कभी मुँदी और कभी खुली नजर पड गई। बहते हुए बादलो पर बिना धुले, और दौड़ते हुए बादलों के साथ बिना भागे, स्थिर इन्द्र धनुष बरसात मे कायम ! और इस रूखे में नीले आसमान के पृष्ठ भाग पर, समस्त हरियाली के ऊपर, ये दूध के-से सफेद पाँखोवाले, खूब खुले, नये धुले, और हर घड़ी बिजली के-से क्रम से हिलते-डुलते ये, कतार बँधे सारस दल के तोरण ! किन्तु दिमाग के आसमान मे, जब मै देखता तो अनेक इरादो के बाद भी जुकाम की दुर्गन्ध थी ही !

मै तो इस तरह आसमान पर ही था, कि जमीन पर, एक नाले के कीच में गाडी धँस गयी। रामधन ने—तुझे मरई खा जाय, तुझे बाघ खाय, तेरी माँ, तेरी बहन—क्या क्या 'स्तोत्रपाठ' नही किये ! गऊ-माता से अपना रिश्ता मानते हुए, ये गालियाँ कहाँ बैठती थी, इसकी ओर रामधन का ध्यान कहाँ ! इस समय तो वह योगियो की-सी धुन से समस्त शक्ति लगाकर बैलो की पूँछे मरोर रहा था, मानों उन्ही की 'दुम मरोर' की तरणी पर हम कीचवाले नाले की बैतरणी पार करनेवाले थे।

इस समय के वे पन्द्रह मिनट। पहले मुझे रामधन पर क्रोध आया कि वह गऊ के जाये गूँगे जानवरों पर इतनी सख्ती क्यो कर रहा है। किन्तु इतने ही मे मेरा शहराती जाग पड़ा, जो धर्मोपदेशों,

पुस्तकीय ज्ञानो, और महिमा के आडबर के नीचे सोया हुआ था। अभी तक मै रास्तो पर जा रहा था, किन्तु शहरातीवाला 'मै' जागा कि मेरी साँसे घड़ी के सेकेडवाले काँटे के साथ घूम उठी। मैंने रामधन से कहा—

"पैसा लेकर, यह हरामखोरी! तुम टिट् टिट् कर तमाशा कर रहे हो। और मेरा वक्त निकला जा रहा!

"तुम जंगली क्या जानो, कि मेरे वक्त की कितनी क़ीमत है। रेल निकल गई तो फिर एक पैसा न दूँगा। सौ जूते दूँगा ऊपर से, सो अलग!"

"और सभा भी क्या ऐसी वैसी है। खास वर्किंग कमेटी की बैठक है। अफसोस, पाजियो, हम तो तुम किसानो के लिये मरे-खपे, प्रस्ताव और उप-प्रस्ताव पास करे, और उनके लिये लम्बे-लम्बे भाषण करके आसमान कम्पित करे, और तुम हमे कीचड के घाट लाकर खडा करदो!" कि इतने मे दूसरा मिनट हुआ, और मैंने रामधन से कहा—"ले यह डडा और लगा साले बैल की पीठ मे तान कर!"

अब रामधन की भी वाचा टूटी। बोला—"हूजूर, यह मेरे घर का ही बछडा है। मैंने इसे बेटे जैसा पाला है। मुझसे तो यह डडा न मारा जायगा। आपने जो कल अपने मामा के यहाँ कबरी गाय देखी थी, जिस पर आप प्यार से हाथ फेर रहे थे, वह इसी की माँ है। इसी का दूध आपने कल खाया था। मैंने ही वह गाय आपके मामा जी को दी—"

मेरा धीरज छूटा। मैंने कहा "लाट साहब के बेटे मुझे तेरे व्याख्यान की जरूरत नही है।" इतना कहकर मैंने जोर से डंडा

ताना और दिया कीच मे फँसे हुए बैल की पीठ पर। और जूडी की रस्सी तोडकर बैल नाले के उस पार !

मैने फिर रामधन से चिढकर कहा "अब क्या तेरा बाप गाडी खीचेगा" और वही डंडा रामधन के सिर पर ताना।

रामधन ने फिर कहा—मेरा बाप नही गरीब परवर ! मेरा बेटा ही गाडी खीचेगा। उधर बैल रस्सी तुडाकर कुछ भागता-सा जा रहा था। वह चौक नही दौड़ रहा था, किन्तु वह चल भी नही रहा था। दौड़ ही रहा था। रानधन ने आवाज लगाई मोहन ओ मोहन ! और बैल ठिठककर खडा हो गया और घूमकर देखने लगा। मानो वाणी से बँधा सिपाही है, और सेनापति की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा है।

गाँधी टोपी से ढँके मेरे साहबी स्वभाव मे कुछ उतार आया। मै देखकर चौका कि क्या बैल, मानव की बोली पर इतना सावधान ! पर मेरे प्राण तो घडी मे थे। मैने कहा—"जल्दी ला बे ! जोत उसे, और चला गाड़ी।"

रामधन ने जूड़े की टूटी हुई चमडे की रस्सी, गाडी मे, बाँधी, टूटा हुआ जोत जोड़ा, टूटा हुआ सैल, कुल्हाड़ी से हरे झाड़ की टँहनी काटकर नया बनाया, और दूर खडे हुये मोहना को मनाने चला गया।

मोहना की रस्सी जब रामधन खीचता, अब वह आगे आने को तैयार न था, यह उसका पीछे का खिचाव साफ कह रहा था। किन्तु रामधन ने धीमे से पुचकारा, उसकी पीठ पर हाथ फेरा, और मोहन, धीरे-धीरे चला आया। रस्सी भी रामधन ने छोड दी थी, वह जमीन पर घिसटती चली आ रही थी। और रामधन दौड़कर, कीच मे आगे आ गया, उसने अपने दूसरे बैल को, जिसे वह कामला कहता था, खोलकर मोहना की जगह पर जोता, और मोहना को कामला की जगह पर।

मैंने पूछा, क्या बैल भी काँपते है रे रमधनवा !

इस समय रामधन, जरा देर कर के,—मानों होश मे न हो,—बोला हाँ सरकार। जब इनको भूख प्यास लगती है हुजूर, तो कँप-कँपी क्यो न आयेगी। और उसने गाड़ी के चक्के का लोहा, पार पकड़कर जोर से खीचा, और गाडी चलने लगी !

इस समय, चूँकि घडी मुझे डरा रही थी, कि शायद मरासियत स्टेशन पर रेलगाड़ी मुझे नही मिलेगी। अत मेरा सिर आसमान का सोचना छोड़कर, जमीन पर उतर आया था। उधर, नालो के उस पार तक बाते करता, बैलो को लाते और हाँकनियाँ मारता हुआ और चिल्लाता हुआ रामधन अब मौन था।

मैंने पूछा स्टेशन कितनी दूर है रे।

रामधन बोला—यह क्या सामने रेल के डब्बे दीख रहे हैं।

यहाँ से कितनी दूर पडेगा।

कोई आधा कोस।

आधा कोस ? अरे बाप रे, अरे गाडी आने को तो सिर्फ २० मिनट रह गये है।

अब मुझसे फिर न रहा गया। तुम्हारे सारे गाडी-बैलो मे आग लगाकर गाँवों मे तो मोटरे ही चलनी चाहिये। महात्मा गाधी गाँवो मे आकर देखें कि कैसे मूर्खों से और कैसे मुश्किलों से काम पड़ता है, तब उन्हे पता चले। अब अगर गाडी नही मिली तो बच्चू—

रामधन ने शायद मेरा क्रोध शान्त करने और विषय बदलने के लिये पूछा—

सुराज मिलने मे कितने दिन और है सरकार !

मै तो क्रोध मे था ही—बोला, तुम जैसे तकलीफ़ देनेवाले लोग रहे, तो हम क्यों स्वराज्य के लिये मरे-खपे। वह ले सिगल हो गया !

रामधन ने, बैलो की पीठ पर धक्का दिया और वे भागने लगे ?

रामधन ने फिर पूछा—सुराज मे सरकार सब आपई (ही) जसे कपडे पहिनते होगे !

हॉ,—तुम लोगो को भी महात्मा गांधी की आज्ञा से खादी पहिनना चाहिये ।'—मैने उत्तर दिया ।

'अच्छा सरकार' रामधन ने कहा । और फिर पूछा—हुजूर आपई जैसे बड़े आदमी सुराज मे होयँगे ?

मैने कहा—हॉ, तभी तो अग्रेज सरकार, स्वराज वालों से डरती है । देखा नही, कल की सभा मे, वो पुलीस इंस्पेक्टर आकर कितना झुककर सलाम करता था ।

रामधन ने कहा—'हॉ सरकार' और चुप हो गया । कि इतने ही मे स्टेशन की बस्ती की सड़क पर, एक राहगीर सेठ ने कहा—"दीखता नही है बे गाडीवाले अन्धे, ऊपर ही चढाये चला आ रहा है ।"

"गाडी तो सड़क पर ही है सरकार । और मै बैलों को ख़ूब थामे हुए हूॅ । आप निकल जायँ ।"

वे थे सेठ शिवदयाल जी । उनकी नजर मुझ पर पड़ गई । आकर गाडी मे, लिहाफ के नीचे सुरक्षित मेरे चरणो पर, लिहाफ के ऊपर से ही मत्था रख दिया ।

स्टेशन आया । किराये चौदह आने ठहरे थे । मैने रामधन को तीन चौवन्नियॉ निकाल कर दी ।

उसने कहा—ये बारह आने कैसे ?

मैने उनमे एक दोअन्नी और मिलादी । और कहा ले ।

रामधन बोला नही सरकार, पैसे नही चाहिये । यो भी तो हम लोग, बेगार में आते ही है ।

मैने इसे रामधन की नम्रता समझी। बोला—यह कुरता लेजा। खादी का है। दो-एक जगह फटा है, सो सिलवा लेना। तेरे पास हमारी यादगारत रहेगी।

रामधन बोला नही सरकार, बकरियाँ बाघम्बर पहिनें तो अच्छी नही लगती ! ये तो आप बड़े आदमियो को ही शोभते है।

तब मैने पूछा, तुझे हमारे आने की याद कैसे रहेगी—

रामधन आँखों मे आसू भरकर, अपने मोहना बैल की पीठ पर उस जगह हाथ फेरने लगा, जहाँ मेरा डडा पडा था।

लोग खूब एकत्र हो गये थे। और एक दो सूत की तथा फूलों की माला मेरे गले मे पड चुकी थी !

जगदेव शर्मा ने, लोगों को सम्बोधित कर कहा—"देखिये, गाड़ी-वाले किसान की अपने नेता के प्रति भक्ति, कि वह बज्जरवाड़े का रामधन भोई, किराये के पैसे नही लेता और भक्ति से उसकी आँखे आँसुओं से भरी हुई है।

लोगो ने एक स्वर मे चिल्ला कर कहा—

"महात्मा गाधी की जय !"

———

नवेली मेहमानिन !

उस दिन न जाने कैसे मेरी तबीयत चल गई। जिस तरह तुम अपनी लिखी गई कविता को छिपा लिया करती हो, कुछ समझकर और शायद कुछ बे-समझे, और समझना तो कठिन है कि क्यो ? उसी तरह, मैंने उसे चुपचाप पहिले कुरसी पर विभूपित किया।

मेरा मन कहता था कि तुम गैरहाजिर हो, और तुम्हारी अनुपस्थिति मे, मुझे घर मे ऐसी किसी अनजान चीज को जगह न देनी चाहिये।

पर यह भी क्या कोई अपराध है ? जब मैं और तुम, खलिहान प्रसाद पटवारी के पीपल के पेड के नीचे, उस दिन यानी पहिले दिन मिले, उस दिन हम तुम भी थे, एक दूसरे से बेपहिचान थे। शादी तो बाद मे हुई।

और यह जो रम्मू तुम अपनी गोद मे लिये घूमती हो, यही कौन मेरे और तुम्हारे बाप दादो से परिचित था, आज न जाने किस लोक से तुम्हारी गोद मे आ बैठा है।

कवि का तो अपरिचित विचार, मौलिक कहलाता है ! तुम्ही ने न, अपने एक गोरखपुर के भाषण मे कहा था ?

सो, इस देवी का, मेरे घर मे, तुम्हारी गैरहाजिरी में भी पधारना, मौलिक तो माना ही जाना चाहिये।

मौलिकता की एक शर्त शायद सुन्दरता भी हो। सो ये देवी विमल शुभ्र-वसना और ऐसी नपी-तुली गठन की है, कि तुम न हुई, नही तो तुमने जरूर, 'नवागन्तुक से' शीर्षक एक कविता ही लिखी होती।

हाँ तो ये आई है। 'मुँह-लगापन' जरा इनमे ज्यादा है। शायद यह स्वभाव तुम्हे पसन्द न हो, किन्तु तुम्हारे कवि-जीवन के रिटायरिग नेचर मे, और नेता-जीवन के अभिनेतापन मे, जो मुँह का बनाना, एकान्त मे बैठना और सैर-सपाटे लगाना है, उसमे इनका मुँह लग जाने का स्वभाव, बहुत भायेगा।

तुम्हारा काल तो अनंत ठहरा। वह तो कवियों का अनंत है। पर मै तो गरीब इन्सान नामक जानवर हुँ। मेरे सुबह, दोपहर और शाम के बाद रात भी होती है। मेरी उम्र के बरस होते है, बरस के महीने, महीनो के दिन, दिन के घण्टे और घण्टे भी टुकड़े-टुकड़ें मे बँटे होते है।

मै मृत हूँ, मुझे मृत साथी ही भाता भी है। अकर्मण्य; यानी दुनियाबी कामों मे लगा। तुम अमर हो, अमराई का एकान्त तुम्ही को शोभता भी है। उस समय मेरा भी एक साथी हो, तो तुम्हे क्यो नाराजी होवे ?

गत दिसम्बर सन्, ३६ मे, हम तुम लड़े, तब तुमने कहा था—"बहुत दूरी से—अपने पारिवारिक और आत्मीयता के आकर्षण छोड़ कर, जो तरुणियाँ अपना जीवन सौपती है, उन पर टूट पड़ने के बजाय, उनका आदर करना चाहिये—तुम तो बस न जाने कैसे हो !"

और मैंने कान पकडकर यह बात मान ली थी। अब इन नवा-गन्तुका के आने पर, तुम भी मानलो मै तुम्हारे सदुपदेश की रिपोर्ट करता (दुहराता) हूँ। ये भी बहुत दूर से आई हैं। शुक्ल वर्ण हैं, गुण-मयी है, मधुरा है, प्रियदर्शिनी है, कोमला है—गुणों की इनमें ऐसी रेल-पेल है कि मै इन्हे अपने घर रहने भी न दू तो तुम मना-कर इन्हें अपने घर रखोगी। तब मेरे विश्राम के दो साधन हो जाँयगे संकट के दोस्त भी स्नेह के दो हिस्सेदार।

हाँ, न जाने तुम्हारे अमर प्रेम में, इनके ओठों पर अपने ओंठ रखना मंजूर हो न हो?

तुम्हारे ओठों पर रखे जाने वाले मेरे ओंठ, क्या किसी के साथ वैसी ही गुस्ताखी करने के हकदार नही?

तब, जब मैं तुम्हे, वाल्ट-व्हिटमन की कविता पुस्तक के पन्ने चूमते, चुपचाप खिड़कियो से देख लेता हूँ, तब मुझे भी क्रोध आना चाहिये—मेरा भी तो उस समय 'इन्सल्ट' होता है? जरा इन्साफ से बोलो।

और वह दो बाप का लौंडा—अहीर वाला यदुवशी। जिसे भगवान् कहकर लोग भौडी गाली भी देते है, और फिर उसको ईश्वर समझ कर, पूजने का पाखण्ड भी करते है वे जनाब तो आठो पहर, बाँसुरी के ओठो पर, अपने ओठ रखे रहते; तब भी झक मार कर गोपियाँ, उन्ही अहीर—नन्दन को पुष्प—हीरक पहिनाने, और अपने ओठ उसके ओठो पर सूहलाने ललचतीं।

जब ओठ पर ओठ रखना इतना पुराना है कि 'कृष्णस्तु भगवान् स्वय' से शुरू होता है, तब तो वह 'स-शास्त्र' हो गया। सो यदि मैंने, तुम्हारे अपने मैके से, यहाँ आने के पहिले ही, इन नवा-गन्तुका के ओठों को अपने ओंठो के बीच ले लिया, तो मुझे आशा है, तुम मुझ पर नाराज न होगी।

हाँ एक बात के लिये तुमसे साफ-साफ कह देना अच्छा है। ओंठ पर रखते ही ये इतनी मधुर है कि इतना माधुर्य, न दधि मे, न मधु मे न माधवी मे।

पर हाँ इनमे एक आदत है। जब अपनी आदत से लाचार, ये जल पड़ती है, तब लोगो पर जरूरत के या बिना जरूरत के कालिमा पोतने, ये तुम्हारी ही तरह उठ खडी होती है।

पर इससे क्या ये अपनी कहानी कहे जायँगी और मैं इन्हे ओठ से चिपकाये जाऊँगा। इनकी जलन मे शान्ति देना, मुझे मेरा कर्तव्य मालूम होता है।

हाँ मै मानता हूँ कि ये बहुत सुन्दर नही है। सदा ही बाग मे, गरीबी से दिन काटे है, अत ठण्डक, गरमी और बरसात तीनों ने अपने जौहर इन पर आजमाये है। किन्तु जिस तरह तुम अपनी कविताओं मे करती हो कि प्रेम के गाहक को रूप का गुलाम नही होना चाहिये। सच पूछो तो तुम्हारी गैरहाजिरी मे, इन्हें पाकर तुम्हारी उस परम सूझ का अर्थ आज समझा।

तुम यहाँ रहती हो, तब तो तुम्हारी हर पक्ति पर, मुझे लाचार सिर डुलाना, और हाँ, हाँ कहना पडता है। किन्तु तुम्हारा 'प्रेम के गाहक को रूप का गुलाम' न बनने देने वाला तो परम-तत्व है। और उसके आधार पर मेरे ओंठों तक बात आगई है, कि मै इनसे कह दूँ कि तुम मेरे पास ही रहो।

और क्या मुजायका है, यदि ये जली-कटी रहे। जली-कटी कह-कर, तुमने मुझे इतना अभ्यस्त बना दिया है, कि स्वय जली-कटी रहकर ये मेरा कुछ न बिगाड सकेगी।

एक दोष इनका मुझे और दीखता है, जिसे तुम्हारे सामने साफ-साफ कह देना चाहिये। ये बड़ी निराशावादी है, इनकी हर साँस से मानों अन्धकार बिखरता है।

क्या दुनियाँ मे मुँह के सौधे और मन के मैले ऐसे लोगों की कमी है, जो प्यारे लगते है, किन्तु बड़ी कडवी बाते करते है, फिर इनकी–जलन मे इनके मुँह से जो निकल जाय, उसे कभी निगलने के लिये, हमें उदार होना चाहिये। क्यो कि जब अपने घर के चूल्हे का धूँआ तुम मेरी बैठक तक छोडती हो, तब मै घर छोड कर भाग तो नही जाता।

और जब, चौक मे, अगारे बिखरे रह जाते है तब भी मै उन्हें हटाकर, भोजन करने के लिये अपनी जगह तो बना ही लेता हूँ।

मेरा तो सिद्धान्त है कि ····················· ·······

··· फिर चाहे कोई इजिन धुँवा छोडे या आग। वह हमे बचाता जाय।

सो इन नवेली श्रीमतीजी के आने से तुम्हारी गैरहाजिरी मे मेरा जी खूब बिलम जाता है।

तुम्हारे आने पर भी बिलमा रहेगा। क्योकि तुम जब 'प्रसाद' और 'पो', 'सूर' और 'गोविन्दाग्रज' की रचनाओं से अपना जी बिलमाते समय, मेरी भरपूर उपेक्षा करके भी, कभी उस पर दुखी नही होती, तो मै यदि इन देवीजी से अपना मन बहलाऊँ तो तुम्हे कष्ट नही होना चाहिये। सच मानों दुनियाँ के कवियो की रचनाओ मे वह सुरुचि, सुगधि और स्वाद न होगा, जो इन नवागन्तुका के दर्शन, स्पर्श और जीवन मे है।

फिर त्याग का भी तो उदाहरण देखना पडेगा। जो अपने पर मिटने को उद्यत हो, उसका निरादर कैसे किया जाय? जो आत्म-समर्पण की ज्वाला जगाये रहे, उससे कैसा मुँह फेरा जाय? जो मेरे लिये तिल-तिल मिटने को तैयार हो, उसका निरादर कैसा किया जाय? जो जीते जी हृदय से चिपक कर रहने का छोटापन स्वीकार करने को प्रस्तुत हो, उस पर अपना बड़प्पन जता कर, कैसे कहा जाय कि मेरे घर मत आओ।

ऐसे 'जन-सेवक' देशी हो कि विदेशी, गुणज्ञ होने चाहिये। सो ये तारीफ के लायक गुण-सम्पन्न है। भारतीयों मे तो, इस जाति के लोग अपने गुण को, अपने मुँह पर लटकाये घूमते है। किन्तु ये गुण का प्रदर्शन लेकर नही चलती। इनकी भलाई तो इनके रग-रग मे भरी हुई है।

अत मैंने इन नवेली मेहमानिन को अपने घर मे जगह दे दी है। तुम नाराज मत होना।

तुम्हारा
बिनारस्सी परसाद

मुन्शी बनारसीप्रसादजी ने चिट्ठी को मोड़ा, एक चौकोन लिफाफे मे रखा, मोड़ते-मोडते, पत्र की पीठ पर, महरी के नियमित न आने और दूध देने वाली गाय के 'कूद जाने' यानी दूध-देना बन्द कर देने की रिपोर्ट और रम्मू को चुम्बन लिख दिया। साथ ही लिख दिया, मेरे ओंठ तो आजकल 'नवेली' के लिये सुरक्षित है। और लिफाफे पर यह पता लिख कर—

श्रीमती हृदयनन्दिनी नायक
शैलनगर
पो० आ० वर्षाघाट
कैलाश प्रान्त .

पत्र को डाकखाने मे डलँवा दिया।

ठीक ६ दिन बाद उत्तर मिला—

श्रीमन्,

अच्छा हुआ। नये कवि यदि नये विषयों पर कविता लिखते हैं, तो आपके पुराने कट्टर दिमाग ने भी...... 'जो कविता लिखी, नये विषय पर लिखी। न वह भगवान पर है, न भक्तों पर, देश-भक्त पर ही है। धूम्रपान ही पर सही।

आखिर कविता और कवियों को कोसते-कोसते ही क्यों न हो, आप कवि बनने चले, यह अच्छा ही हुआ। विषय भी कैसा बढिया मिला आपको। सिगरेट पर, यह विवेचन अभी ताजा ही ठहरेगा।

दस-बीस नवेलियाँ रोज 'राख' करके आपकी 'सुरुचि' बढ़ेगी। सारी शुक्ल-वर्णा बेचारियाँ, श्याम हो जायँगी। उनके जलने-भुनने मे आपने साम्य मेरे साथ ढूढा। पहेली की नवेली से मुझे डाह क्यों होने लगी, जब साक्षात् नवेली के आने तक मै धीरज धरने की बात सोचे हुये हूँ।

केवल एक ही डर है, धुएँ से निकोटिन जहर आपके कलेजे मे बढ़ेगा, और वह आपके और रम्मू के दोनों के लिये हानिकारक होगा। इसके सिवा, मुँह से एक दुर्गन्ध भी आने लगेगी। सभ्यता में नवागता नवेलियो के सिवा, बाजार मे और भी चीजे मिलती है। किन्तु जो व्यक्ति 'प्रसाद' और 'पो' पर तानेकशी करे, उसमे कश खीचने का लालच कोई देखे तो आश्चर्य क्या?

अभी तक गृह-जीवन का विनोद, हमारे विषय स्वभावो मे भी जीवित था। अब नवागत आदत से आपके स्वास्थ्य को हानि पहुँचते ही स्वभाव को भी हानि पहुचेगी। जिसका परिणाम यह होगा कि आपकी आज की कविता, कल की गालियों मे बदल जावेगी। यह मैं डाह से नही, चाह से कह रही हूँ।

कितना अच्छा होता यदि ऐसा ही गद्य आपने बेचारी घर की महरी पर लिख दिया होता । वह स्वास्थ्य-नाशक तो नही है। बर्तन और मकान साफ रखती है। स्वास्थ्य-वर्धक है ।

आपकी

नही, युग के महाभावो की

हृदयनन्दिनी

मुन्शीजी ने पत्र देखा। हँसे कि, मेरे दुश्चरित्र होने पर लताडे होंगी । किन्तु खोलकर पत्र पढते ही नन्दिनी की प्रतिमा के सामने झुक गये । बोले–

'बाजी मै हार गया'

मुहब्बत का रंग

छरहरा जवान। गोरा बदन। चेचक के दाग। कानो में सोने के दो बहुत पतले बाले पडे हुये। आँखों मे कल रात काजल लगाया था, जो अभी, दूसरे दिन के तीसरे पहर तक धुला नही था, मानों खाये हुये प्याज़ की बू हो, जो मिटने के लिये और वक्त माँगती हो। माँग-पट्टी के बाल। हाथ मे चाँदी की एक काँच का टुकड़ा लगी हुई, अँगूठी। बोलने मे उबासी आ रही थी, मानो कही से थककर आया हो, और सोने की तैयारियाँ कर रहा हो। कुछ गुस्सैल स्वभाव—मानों सारा संसार उसके रूप की हाट मे रहन रखा हुआ हो। गर्व से कुछ बनकर, कुछ मटककर चलने की आदत, बैलो जैसे काँधे हिले, और हाथी जैसे बेकाबू पाँव धूलवाली सड़क पर पड़े कि धुएँ जैसी कुछ धूल मुँह तक उडे, और अंगारे जैसे पावों पर कुछ धूल राख जैसी चढ जाय। आदमी होकर, जरा मे चिढ़ पड़ने, और थोडे मे रो पड़ने की आदत। झट से चमक उठने का स्वभाव। अपनी औरों पर की हुई भलाइयो की लम्बी फेहरिस्त, अपनी स्मृति-जेब मे, किन्तु उससे दसगुनी बड़ी औरों द्वारा अपने पर किये गये अपकारों की फेहरिस्त। और इस बात का अल्हड अज्ञान कि अपकारो के औरों द्वारा होने पर भी, उपकारों की फेहरिस्त अपनी ही तबीयत मे छोटी होने के क्या

मानी होते है। बनकर, सजधजकर, बीच सडक से निकलने का स्वभाव। विदेशी व स्वदेशी और सर्वदेशी के भाव से परे, बिलकुल ठेठ देशी। पतली, लाल किनारेदार, पर दाहिने घुटने पर पैबन्दवाली धोती। कुरता जरा कुछ मैला-सा, पर सफेद मलमल का, जिसके नीचे लाल रेशम की जाकिट। सफेद कुरता मैले से और रेशम की झाँकी से सयुक्त झाँई खाकर, सफेद कम दीखे, बैगनी ज्यादा। पान ठूँसकर खाने, उसकी लाली की अँगुलियाँ दीवारों पर पोछने, और उससे बिगडे ओठ, कुरते से, सँभालकर पोछने की दक्षता! ओठों पर पानी। मूछो का कुछ-कुछ आरोप-सा हो ऐसी उम्र, शायद मर्दाने कपडे बदन पर होने के कारण। भोपाली जुल्फ रखने की ख़बरदारी और मुडी जुल्फ के गालो पर आने पर, उन्हे मुडा हुआ रखने के लिये, पीले चदन की दोनों गालों पर दो बूँदे। सिर पर पाग, जरा टेढी, बनक कुछ इन्दौरी। रियासत अनुराधापुर के निवासियो के सिर पर प्राय: ऐसी ही पाग होती है। पाग का रंग मोतिया, पीलेपन की झाँई मारता हुआ। किन्तु उसकी नोक पर, कपाल पर लटकनेवाली नई सभ्यता की 'द्वितीय चोटी' की कृपा से, तेल कालिमा। दाँतो मे सोने की कीले। हाथ मे, अँगुलियो की पोरों पर मेहदी लगी हुई। प्रश्न पूछने पर, गुर्राकर घूरने उपेक्षा से जवाब देने, और फिर शरमा जाने का लहजा। हाथ मे बुन्देलखंडी लाठी, पूरबी नही जिसमे ऊँची गाँठे होती है, और नीचे लोहे की सिमियाँ लगी होती है। सीधी, सादी, पीली लाठी, जिसमे ऊपर सूत का, श्रावण की राखी फैशन का, रगीन बुन्दा लगा हुआ, और बीच-बीच मे चमड़े के बन्द लग हुये। ठिगना कद, उम्र को छिपाने का सयुक्त हथियार-सा, आकर्षण का विक्रम अमर रखने का रामबाण नुसखा-सा। देखने में गुस्सा, किन्तु बोलने मे मुस्कराहट; मानों सतपुड़ा की इन घाटियों के बीच, कोई समथर

जमीन ही न हो, जहाँ स्टेशन बन सके, और आदत की गाडी ठहर सके। पडोस मे रहनेवाले जासौन गाँव के मालगुजार के बिगड़ैल लड़के द्वारा फेंके हुये, कागज के चित्रोंवाले सिगरेट केसों को जेब में रखने की सावधानता। कपडे रँगने और उन्हे सँवारने की अच्छी थियोरोटिकल जानकारी, और उस पर जहाँ-तहाँ मुँह मारना। गुलेल रखने, और उसे अपनी नजर ही की तरह, बेगुनाहो पर, छुपकर आजमाने की कुछ सफल, और अधिक असफल आदत।

और यह कहानी, मै उन लोगों के लिये तो लिख ही नही रहा, जिन्हे दुनिया में फुरसत नही है, या फुरसत कम है। इसका चरित नायक कोई हो, पाठक किसी को भी मानें, किन्तु इसका पाठक, और इसका आत्मा तो वही हो जिसे जल्दी नही पड़ी है।

हाँ, तो कपडे रँगने की जानकारी मगर जात तेली। नाम भोला, वल्द बच्चू। साकिन अनुराधापुर राज का अनुराधापुर शहर। किराये से गाडी चलाने का रोजगार। अनुराधापुर, गाँव होकर, 'राज' होने से शहर। महल मे शहर चमके, सड़कों पर गाँव। रेल से दूर—६७ मील। हीरापुर स्टेशन से बैलगाडी चौथे दिन पहुँचे।

(२)

"तो सुस्ती किस बात की आती है?" नसीबन ने कहा, ज़रा सँभल कर सोचते हुये मानो अपना हक आजमाती हो।

रमजान बोला—"तुम तो बस वैसी ही हो, बेल जैसी, बेर देखा न बबूल, सर चढ़ने को दौड पड़ी।"

"जो लिपटता है, वह तो सर चढेगा ही। काँटे मे बदन कँटवाना क्या कोई यूँही अपना रोजगार बनायेगा। दस-बीस चुभनेवाली बाते सुनते हो, और फिर सफेद लम्बी-दाढी हिलाकर मुसकरा देते हो—

यह सर चढाने का न्यौता जो देते हो—अरे हाँ। जानते हो, आखिर लडका है। उसमान फौत हुआ है, तब से उसे मुँह लगा रखा है। और आज जरासी बात पर उसे नाराज करते हो। खिलौना तुम न ले दोगे, तो कौन लेदेगा ?"

रमजान रँगरेज है। नसीबन उसकी स्त्री है—रँगरेजिन। उनके एक ही एकलौता लड़का था उसमान। कोई ११ बरस हुये, वह आठ बरस की उमर मे मर गया। करीमन उसमान की माँ, और रमजान की दूसरी औरत, सौर से बाहर होते ही मर चुकी थी। उसमान को, उसकी 'बडी माँ' नसीबन ने पाला था। उसमान के मरने के बाद, रमजान की तबीयत कही नही लगती थी। वह कपडे रँगता तो, हौजो के बने रग की तरफ ही देखता रहता, और तीसरे पहर से शाम हो जाती। रँगे कपडे सुखाते समय दरख्तो की तरफ देखता तो दरख्तो, उनकी डालियो, उनके पत्तो, और दरख्त पर बैठे पक्षियो के तरफ ही देखता रह जाता। नसीबन ने देखा, पुत्र-शोक एक ऐसा नाला है, जो उतरती उम्र के रमजान से लाँघा न जायगा। उसने रमजान की याद के पैर रखने, और सकट के आरपार आने-जाने के लिये, एक सजीव बुत ढूँढ दिया। यह था, बच्चू तेली का लडका भोला। बड़ी-बड़ी आँखे, गोरा बदन, कोई दस-ग्यारह बरस की उमर। रमजान से बाबा कहता। और मुहल्ले मे यदि कोई उसे डाँटता तो रमजान से आकर लिपट जाता। एक खूटे से बँधते-बँधते पशुओ को, घर और घरवालों से मुहब्बत हो आती है, भोला तो आदमी का बेटा था।

(३)

अब भोला बीस वर्ष का हो चला था। वह रमजान से जब

बोलता अधिकार की भाषा मे। रमजान दिनभर उससे विनोद करता रहता। विनोद ने ऐसी तदबीर की, जिससे भोला की बेवकूफी की बाते टालने मे सहारा मिलता, देरी से की जा सकनेवाली बातो को जल्दी से करने की ज़िद करने पर देरी लगाने के लिये समय निकल आता, और किसी अटपटी और अनहोनी-सी बात की जिद यदि भोला करता, तो विनोद वह समय का वह ख़ाली मैदान था, जो समस्याओ पर सोचने और उन्हे सुलझाने का समय देता। विनोद अकरणीय कार्यो पर, न करने की बात कहने पर, जी पर ठेस न लगाने देने, अधिकार का सिहासन डावॉडोल न होने देने और चेहरे पर गुस्से से शिकन न पडने देने का मुलायम मसाला था।

भोला को उसके एक दोस्त ने न्यौता दिया है कि, अनुराधापुर रियासत से लगी, विशाखापुर रियासत के एक गाँव, सोनामाटी को, वह अपने दोस्त की बारात मे जावे। तारुण्य, बारात मे जाना, मित्र का न्यौता, जाति मे 'कुछ हूँ' दिखाने की साध, और खूबसूरती— इन सबके साथ अगर हो चरम-दारिद्रय, तो वह गाँवो-खेड़ो की, खून मे खानी और बदन पर मांस रखने वाली तरुणाई को, मौत के घाट ले जाने तक विद्रोहिनी बना डालता है। भोला, अपने चाचा के यहाँ रहता था, जो गरीब था, और चोरी के अपराध मे दो बार सजा पा चुका था। उसके न माँ थी, न उसका बाप था। नसीबन ही उसकी अम्मा थी, और रमजान उसका बाप। अधिकार की यह बुरी आदत है कि वह अपनी मर्यादा सदा ही लाँघता आया है।

आज, रमजान से भोला ने कहा—"बाबा, आज हमारी पगिया रँग दो।"

"वाह रे लाट साहब के बेटे, न ढग के कपड़े, न पैरो मे जूतियाँ, और पगिया रँग दो।' जवाब पाया।

ना बाबा, जूतो मे तो तेल देकर रख दिया है । जूते तो ख़रीद लिये । कपड़े को रेशम की 'जाकट' क्या बुरी है—हाँ मलमल का कुरता मैला है, उसे मैं धो लूँगा । न हो, उसे भी रँग दो ।

रँग दो । अरे लाट साहब, शादी तेरी है या तेरे दोस्त की । व्याह मे रँगा कुरता तो दूल्हा पहिना करता है । तेरा कुरता कैसे 'रँग दो' । बारात मे जाकर तो तू दुलहिन माँगने लगेगा ।

भोला या तो खुश होना जानता था, या गुस्सा होना । विवेक का कोई मध्य-बिन्दु उसके स्वभाव में ठहरने के लिये न था । उसने अपनी बाजी गिरती देख, नसीबन से कहा–"देखा न अम्मा तुमने । आज बाबा मेरी बात के पैर न जमने देगे ।"

रमजान ने कहकहा लगाया—"अरे तेरी बात के पैर न सिर, जमे तो कौन जमे, ओर कैसे जमे ।"

नसीबन ने कहा—"अच्छा कुरता न रँगो वह दूल्हा का ही रँगा रहने दो । पगिया तो उसकी रँग दो ।"

और भोला की ओर मुख़ातिव हो कर कहा—"बेटा, तेरी पाग ले आ ।"

पुरुष पर स्त्री के अधिकार की बात पर, मानव जन्म से ही विश्वास करता है । भोला तो बरसो की बीसवी-इक्कीसवी सीढ़ी पर था ।

नसीबन उठी, उसने हुक्के मे तम्बाकू भरी । अगारे चढाये । हुक्के की नाल, अपनी ही फूॅक से ठीक की । और रगीन घर की उस सम्राज्ञी ने, तम्बाकू की वह नियामत अपने बूढ़े सम्राट् के सामने पेश की ।

रमजान जरा खाँसा, फिर उसने अपना मुँह अपने गले पर पड़े गमछे से पोछा और हुक्के की गुड़गुड़ी मुँह मे लेकर, धीरे-

धीरे इस तरह गुडगुड़ाने लगा, मानों जाड़ों के दिनो, देर से लौटकर आया हुआ कबूतर, अपने घोसले मे, अपने परिवार को पंखों मे दबा, प्यार से गुर-गुरा रहा हो।

बचपन मे, एक स्वस्थ बच्चा, अनेक बड़े आदमियों की दौड और फुर्ती अपने मे रखता है। हुक्के की तम्बाकू अभी सुलगी भी न थी, कि भोला अपनी पाग लेकर आ गया। और उसे रमजान के पैरो पर फेक दिया—मानों वह उसकी आत्म-मर्यादा हो, जो पगिया रँगवा लेने के लिये रिश्वत की तरह, पैरों पर बिखेरा गया हो।

रमजान ने हुक्के की गुडगुड़ी मुँह से न हटाते हुये, पाग समेटी, और उपेक्षा से नसीबन की तरफ फेकी।

श्रौर कहा—"यही आठ-नौ जगह फटी पगिया है न, जिसे महज अच्छा रंग देने से वह इस तेली के बेटे को, ब्याह मे रँगीला दीखने-वाला छैला बना देगी।"

"देखो अम्मा, बा बा कैसी बाते करते है।" भोला ने कुढकर कहा और आँसू बहाते हुये अपनी पाग खुद समेटने लगा।

नसीबन बोली—"ठहर, जरा ठहर तो। आँसुश्रों के रँगने से वह पाग, रगीन होने से रही। इसे तो रंग से ही रँगना होगा। अच्छा कौन-सा रग है पाग का?

भोला बोला—"बनिया बैठने तो देता नही, श्रौर कहे झुकता-सा तौलना! बाबा कुछ बोले भी तो!"

"अरे तो बाबा के बेटे, आज तो रंग तैयार नही है। रंग को तैयार करने मे चौबीस घण्टे लगेगे। वक्त की घड़ियाँ भी क्या कोई बिस्तरा है, जिसे जब चाहा लपेट लिया, और जिसे जब चाहा फैला दिया। श्रौर तेरी अम्मा क्या होई—"

"मैने तो अभी कुछ नही कहा" नसीबन ने जरा तमक कर रहा। श्रौर कहा—"यह चीनी-मिट्टी की माट मे रग तैयार जो

रखा है ?" रमजान, जरा खाँस कर बोला–"वह तो मोतिया रंग है।"

भोला का मन, निराशा के बरसाती नाले मे डूबता, थाह पा गया। बोला–"मुझे भी तो मोतिया रंग का ही पाग चाहिये।"

नसीनब वोली–"लो अब तो रँग दो।"

रमजान ने हुक्का हटा दिया। और अपनी मिरजई के बन्द खोलते हुये कहा–"भोला लड़का है। मगर तुम तो नन्ही नही हो। जानती हो कि वह चीनी-मिट्टी की माट है। रियासत के फरमाँ खाँ की पागे रँगने के लिये वह रग तैयार किया गया है। घोडा बादशाह का हिनहिनाये और कल्लू मोदी अपनी खुजडी उस पर रखने दौडे—अजब मसल है। भोला को बारात मे क्या जाना है, तुम्हे उसे सिगारने के लिये चारो खूँट जागीर भी छोटी मालूम होती है।"

नसीबन ने पगिया उठाई और पानी मे भिगोने लगी। भोला वोला–"अम्मा, एक तो मै पगिया मोतिया रंग मे रँगवाऊँगा, दूसरे बाबा जान, मुझे मेरी पाग वैसे ही बाँध कर देगे जैसी नायब साहब की पागे बाँधा करते है और तीसरे स्वयं बाबा रँगेगे, तो पगिया रँगी जायगी–नही तो भोला बारात न जायगा।"

सन्धि की शर्ते रख दी गई। बूढा रमजान, अपना निर्मल हास्य बखेर कर वोला–"बादशाह सलामत की पागे भिनसारी रात रँगी जायगी। और तेरी तो पहिले रँगी जानी चाहिये।"

फिर नसीबन से बूढा बोला–"यह क्या मजाक करती हो, यह पगिया कैसे रँगी जायगी।"

नसीबन बोली–"नवाब साहब की पगिया जिन्दगी भर रँगी है। और जिन्दगी भर रँगेगे। क्या उस रग मे एक डोब, किसी

गरीब की पगिया को नही मिल सकता ? और आखिर नवाब साहब की पागे भी तो तुम्ही बँधी–बँधाई, डब्बों मे बन्द करके दोगे ? तब क्यो न तुम एक पाग इस छोरे की, उसी ढब पर बाँध दो ।"

रमजान चिढ़ा, बोला–"औरत की जात जो हो। क्या जानो नमक की कीमत, और रोटियो के हीले को। मै तो रईस की पाग के रँग में, भोला की पाग नहीं डुबाऊँगा ।"

नसीबन ऐसी चौकी, जैसी उसकी आँखे खुल गई बोली–"तुम मर्द हो" और भोला की पाग उठाकर, गीली ही भोला के पास फेक दी। और कहा–"जा रे बेटा बिना माँ-बाप के छोरो को, पाग रँगते वक्त रँगरेज भी यह मालूम कर देना चाहता है, कि वे बिना माँ–बाप के है, और गरीब है। गरीब-गरीब को धुत्कारे और अमीर-अमीर की-सी कहे, इसे दुनिया कहते है ।"

भोला के मुँह को लकवा मार गया। गीली पाग, नसीबन की देहली पर ही पडी छोड़कर वह चुपचाप चला गया ।

(४)

रमजान बोला—"लड़के की आँखो पर गुस्सा भरा था ।"

नसीबन ने कहा—"गुस्सा किस पर करेगा अभागा ।"

रमजान—"क्यो ?"

नसीबन—"पूछते क्यों हो ? पगडी पीछे बारह आने ही तो मिलते है। इन पैसो भी क्या भोला महँगा है ?"

रमजान—"वह रईस है। उसके रंग में मै इसकी पाग कैसे डुबा दूँ ।"

नसीबन—"कैसे ? वैसे ही, जैसे मै जरूरत पडने पर अपने बेटे उसमान की पाग डुबा देती।"

"उसमान ! —"

बूढ़ा हिल उठा—"उसमान !"

नसीबन ने कहा—"भोला ने तुमसे उसमान का दुलार पाया है। तब आज पाग रँगवाने और बँधवाने कहाँ जावे।"

(५)

दलील वजनदार थी। हाईकोर्ट का फैसला था। दावा मय खर्च के स्वीकृत हो गया।

× × × ×

अनुराधापुर के रईस, सोनामाटी के पास के अपने रियासत के गाँव, गोलन डोह से शिकार करके लौट रहे थे। नवाब साहब के साथ, धारनीगढ के राजा शार्दूलसिह, दो शिकारी, दो सरदार और एक घुड़सवारों की टुकड़ी थी। जब मोहनपुर के नाले से सरकारी सवारी गुजर रही थी, तब बैलगाडियो के पास खडे लोगो के झुण्ड के बीच, एक गोरे से छोकड़े को उन्होने अपनी-सी, ठीक अपनी-सी पाग बाँधे देखा। पाग का बाँध वही था, बनक वही थी, पेच वैसे ही कसे थे, रंग भी वही था। रईस ने अपने सिर से पाग उतारी और देखा। यह रईस की पाग थी, जो सर से उतर रही थी। दोनो मिलाया ! दो पागे, एक भीड़ मे खड़े किसी खूबसूरत उठाईगिरे की और दूसरी अपनी; दोनों, आपस मे, अगर राई बढती न थी, तो तिल घटने के लिये भी तैयार न थी। दुखती चोट, और अनहोना दुर्भाग्य मानों ऐसी चीजे है जो होकर रहे। जब रईस ने अपनी पाग उतारी तब भोला मुस्करा

दिया । दो घण्टे के बाद जिबह् करनेवाले जानवर भी हरी घास को, बड़े चाव से खाते है ।

एक सिपाही घोडे से उतरा । उसने नाले की घाटी पर चढती हुई बैलगाडियो को रास्त मे ठहराया । उन सब गाडियो मे तीन ऊपर चढ चुकी थी । दो घाटी से फिसलकर नाले मे वापस नीचे आ गिरी थी । और दो अभी चढी ही न थी । अब इसके बाद से पूछ-ताछ शुरू हुई ।

"किस गॉव की बारात है ?"

"अनुराधापुर की ग़रीबपरवर ।"

"कौन जात हो ?"

"तेली सरकार !"

"क्या पेशा करते हो ?"

"अपना ही पेशा—तेल बेचते है !"

"कहॉ जा रहे हो ?"

"घर, अनुराधापुर ही तो चल रहे है ।

फिर, मोतिया पाग के छैल-छबीले की तरफ घूमकर, सिपाही पूछने लगा—

"त कहॉ रहता है बे लौडे ?"

"बही अनुराधापुर !"

"किसका लौडा है ?"

"तेली का लड़का हूँ ।"

"क्या नाम है तेरा ?"

"भोला ।"

"बाप का नाम ?"

"बच्चू ।"

"तेरा बाप क्या करता है ?"

दूल्हे के बाप ने, बीच ही मे कहा, "इसके माँ–बाप कोई नही है सरकार । गरीब है बेचारा ।"

सिपाही ने फिर पूछा—"तेरी पाग किस रँगरेज ने रगी है बे ?"

"रमजान बब्बा ने ।"

सिपाही ने चट से पाग उतारी और एक-सा रग, एक-सी-बनक, एक-सी सुन्दरता देखकर भी यह गरीब की पाग थी, जिसे सिर से सदा के लिये उतारते हुये भी, सिपाही के हाथ में, झिझक की जगह न थी। सिपाही ने घूरकर लडके को इस तरह देखा, मानो खा जायगा । भोला सहम गया ।

दोपहर होता आ रहा था । मजदूर, खेतों मे गेहूँ काटने मे जुटे हुये थे । छोटे बच्चे, पशुधन को पानी पिलाने नाले पर ले जा रहे थे । आमो के बौर महँक रहे थे, और झर भी रहे थे । सडक की धूल उड़कर, राहगीरो के मुँह, उनकी आँखो और आँखो की पलको के बालो तक को मटमैला किये हुये थी । गाँव की मजदरिने, गेहूँ की पूलें बाँधती हुई गा रही थी—

"जी मे एक पहेली दूखी
दुनिया आज हरी, कल सूखी"

और शास्त्रों को रटे हुये पडित जी गेहूँ के पूलो की भीख माँगते हुये, एक हाथ मे सुलगी हुई चिलम और बगल मे डडा दबाये अपने ज्ञान को तुलसी की इस वाणी के द्वारा औधाये चले जा रहे थे ।

"धरा को सुभाव इहै तुलसी
जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना।"

और खेतो में छोटे-छोटे बच्चे, वृक्षो पर चहकते, पक्षियो को ढेले मार-मारकर उड़ा रहे थे। हर इच, हर मंजिल, दर पर दर, और पग पर पग, मौसम की तरह बैलगाडियाँ धीरे-धीरे चली जा रही थी।

(७)

सीतलसहाय कान्स्टेबल रमजान को खोजता हुआ बोला--"चलो बब्बा तुम्हे दरबार ने बुलाया है।"

नसीवन ने पूछा--"क्या नवाब साहब बहादुर आ गये।"

सिपाही--"हाँ, अभी लौटे है।"

रमजान--"हमारा रईस बडा नामी है। परसूँ कही पागे देखी, तबीयत बहाल हो गई। फरमाया--इस बार पागो की रँगाई नही मिलेगी, इनाम मिलेगा। रमजान बब्बा धारनीगढ क राजा साहब, इन पागों की रँगाई-बँधाई देखकर बाग-बाग़ हो गये है। कल आकर इनाम ले जाना। सो उसीका बुलावा आया दीखे है।" यह कहकर, कान्स्टेबल से कहा--"हवलदार साहब, बैठो, चलता हूँ।"

हवलदार बोला--"सरकार ने जल्दी ही याद किया है। चलो। वे इस वक्त दफ्तर मे है।"

रमजान ने मिरजई पहनी। वह उसके पास उसके ईमान की तरह एक थी। और डाढी पर हाथ फेरकर, वह अपने पेट की लाचारी से रँगे हाथो, चल पड़ा महल की तरफ़।

× × × ×

फरमाँ खाँ कुर्सी पर बैठे थे। और एक टेबल पर सजाकर छ पागे रखी थी। कहना न होगा, कि इन छै पागों मे से रईस की एक पाग, हटा दी गई थी, और भोला के सिर से उतारी हुई पाग, इनमे मिलाकर रख दी गई थी। नवाब ने पूछा—

"ये सब पागे हमारी ही है न रमजान।"

रमजान—"आप ही की तो दीखती है हुजूर छै पागे ही तो परसूँ रँगकर, खादिम दे गया था।"

नवाब—"तब तुम चोर हो, बदमाश हो।'

रमजान का स्वभाव, इस वक्त आँवलो की मोट था, जो फैल गया था, और समेटे न सिमट रहा था। उसने धीरज सँभाला और कहा—

"रमजान ने हुजूर का नमक खाया है। उसकी पीडियो मे बेईमानी नही है।"

नवाब—"और उस तेली के लौडे ने क्या घुलाई दी थी।"

रमजान की गाँठ अब सुलझ गई। वह धीरज से बोला—

"हुजूर वह छोटा-सा बच्चा है।" धारनीगढ़ के राजा ने इसी वक्त कहा—"आपका रँगरेज आपको भी छोटा बच्चा समझता है, और बहलाने की कोशिश कर रहा है।"

नवाब—"बेईमान, साफ-साफ बता। तेली के लौडे की पाग का रंग, और बनक, दरबार की पाग के रग की क्यो है?"

रमजान—"खता माफ हो सरकार, यह नमक का, रोटियो का, रग है, और वह मुहब्बत का रंग है। वह मेरे बेटे की तरह है।"

इरादो के काले, जबाब के खूँखार, कलम के शाहंसा; पैसो के भरपूर, रहम के ख़ाली, और टूट पडने मे जंगली जानवर को अधिकारी कहते है।

घोडे का हटर उठा नवाब ने कहा—"मुहब्बत का रंग हराम-जादे। ले तुझे इस शायरी का मजा चखाऊँ।"

रमजान ने छत की तरफ देखा—मानो शैतान के घर मे खुदा को ढूढ रहा हो। सिर ऊँचा किया—मानो प्रेम सर्वनाश के समय भी, दामों से ऊपर उठकर खड़ा रहना चाहता हो।

रमजान ने कहा—"माफ करो गरीब-परवर, गरीबो को बेटे-बेटी समझे अन्नदाता।" रईस, समुद्र की तरह इस समय, अपने आवेश मे खुद डूब चुका था।

रमजान पर—

हंटर, फिर हंटर, फिर हटर! रमजान खड़ा रहा। महल के पत्थर पिघल उठना चाहते थे। सारे अधिकारी मानो सोचते थ कि आज राजधानी के सुहाग इन्साफ पर हटर पड रहे है। पर बिकी जीभ, और कायर कलेजे से टुकुर-टुकुर देख रहे थे।

" ोर हमारी पाग चुराकर उस तेली के लौडे को दे दी।"

रमजान धक्के मारकर निकाल दिया गया। उसकी मिरजई खून से लथपथ थी।

मसजिद मे नमाज पढ़ी जा रही थी। मदिर मे पूजन हो रहा था। गिरजाघर का घण्टा बज रहा था। और रमजान अनुराधापुर की सड़क पर इस तरह जा रहा था, मानों हिमालय शिखर से ठुक-राया हुआ हिम-खण्ड है, जो गंगा बनाता चला जा रहा हो!

गाड़ियाँ लौटी कि, खबर देने भोला, रमजान बब्बाके घर गया। कान्स्टेबल द्वारा बुलावा सुनते ही वह राजमहलो की ओर दौड़ा।

रास्ते में लड़खडाता, कराहता, और आँसू और खून साथ-साथ टपकाता रमज़ान मिल गया। उसे खून से लथपथ देखकर भोला उसके पैरों मे लिपटकर बोला—"यह क्या है बाबा"—

रमजान बोला—"मुहब्बत का रंग ऐसा ही हुआ करे है बेटा।"

केदार साहब का नाम अब अधिक समय के लिये छुपाकर, उनके साथ अन्याय करना उचित नही जान पड़ता। उनका नाम था हलधरप्रसाद वे बहराइच तहसील-बोर्ड के सभापति और अपने इलाके के पहिले दर्जे के आनरेरी मैजिस्ट्रेट भी थे। खैर, तो उनके पास एक नीलम जड़ी हुई सोने की अँगूठी थी। उसे पहिनती तो थी अक्सर ताल्लुकेदारिन साहिबा और वे जरा विशालकाय होने के कारण, उनकी छिगुनी में वह ठीक बैठती भी थी, परन्तु श्रीमान् शादी-विवाह आदि प्रसिद्धि के अवसरों पर उसे खुद पहिन लिया करते थे। खूबसूरत, मालगुजार पुत्र, और गाँव के निवासी होने से, उनकी जवानी मे वह अगूँठी उन्हें फब जाती थी। कम से कम देखनेवाले लोग उनका पहिनना सह जाते थे। परन्तु इस समय हलधर जी ५० की उम्र को पार कर चुके थे, अत. नये लड़के उनकी अँगूठी पर हँसा करते थे। खैर, तो ब्राह्मण लोग भूख नामक शत्रु का पता पाकर, और उसे पेट में छुपा देखकर, तरह-तरह के प्रहार कर रहे थे, बूरे के बारूद, पूरियो के चक्र, लड्डुओं के बमगोले। जो कमजोर थे वे शाक-तरकारी का कीचड़ ही शत्रु पर अधिक फेकते थे। श्रीमान् हलधर प्रसाद मन-ही-मन इस बात का गर्व कर रहे थे—"वाहरे मै! कितने ब्राह्मण मेरे यहाँ मोजन कर रहे है। है किसी मे इतना दम? अरे कोई है? लाओ लड्डू श्याममुख शास्त्रीजी को परोसो!" श्याममुख शास्त्रीजी मानों कृष्णभक्ति के बहाने प्राप्त कृष्णत्व के साक्षात् स्वरूप थे। उनका चौकोन मुँह, चौड़ा चेहरा, इमली के बीजो की तरह मुँह पर नाक के आसपास चिपके हुये, छोटे-छोटे नेत्र, और श्यामवर्ण मे उनके लाल-लाल ओठ, स्पष्ट प्रगट कर रहे थे कि शास्त्री श्याममुखजी, सचमुच ही 'अग्रजन्मा' हैं। विधाता ने उनके पूर्वजों को, प्रारम्भ में उस समय

बनाया था, जब उसका हाथ इस कला पर जमा न था। जब ताल्लुकेदार के आग्रह से लड्डू परोसना देखते तो, उनकी तबीयत बाग़-बाग हो जाती। वे पुलकायमान होकर कह उठते—"कृपानाथ, अन्नदाता, वसुन्धराधिपति, धर्म आप ही जैसो के सहारे टिका है, नही तो वह कभी का रसातल को चला गया होता।" हलधर-प्रसाद बार-बार परोसनेवालो को पुकारते, और भिन्न-भिन्न सज्जनो की थाली मे, तरह-तरह के व्यञ्जन परोसने को कहते।

(३)

चूँकि वे नीलम की अँगूठी तर्जनी ही मे पहिने हुये थे, अत. भोजनो का आग्रह और नीलम की अँगूठी का प्रदर्शन दोनो साथ ही साथ होते चलते। यह कहना तो बडा भारी गुनाह है कि आया हल-धर प्रसादजी, भोजन का आग्रह करने की सेवा-रूप मे नीलम की अँगूठीवाली तर्जनी को बार-बार आगे करते थे, या अँगूठी को बार-बार आगे करके दिखाने के लिये, भोजन की मनुहार की यह दौड-धूप थी ! जो हो किन्तु ताल्लुकेदार साहब का यह कृत्य, उनके सम्बन्धी और दूल्हे के पिता पडित गगाधरजी को अच्छा न लगा। उन्हे यह अपमानजनक मालूम हुआ कि, लडके के पिता के सामने, नीलम की अँगूठी दिखाकर अपना बडप्पन जतावे, वे दूर एक चारपाई पर बैठे तम्बाखू खा रहे, और अपने आसपास की जमीन पर अपने और अपने साथियों के लिये थूक-थूक कर कुभीपाक नरक का निर्माण कर रहे थे। वे तुरन्त उठे, और जेवनार के बीचो-बीच आकर अपनी गरमी के दिनो मे भी पहिनी हुई रुई की बारहबण्डी उतारकर खड़े हो गये। उनके हाथ मे, कुहनी के ऊपर, और कंधे के नीचे भुजा पर

एक सोने का कंकण था। उन्होंने, अपने मलाई की तरह गीले चमड़े पर से किसी प्रकार कंकण कुहनी पर सरकाया, और ताल्लुकेदार साहब ने ज्योंही नीलम अँगूठीवाली तर्जनी को आगे बढ़ाकर कहा—"यहाँ इमरती परोसो" पंडित गगाधर ने चिल्लाकर, और अपना हाथ मोड़ कर, सोने के ककण को आगे करके, कंकण-समेत कुहनी हिलाते हुये कहा—"और इधर देखो जी, यहाँ मालपूए परोसो, अरे हाँ, कब तक देखा जाय।" लोगों पर आफत टूट पड़ी; उन्हें खाना और हँसना दोनों एक साथ करना पड़ा ताल्लुकेदार साहब तो अँगूठे पर ककण की चढाई देख ऐसे गायब हुये कि फिर उन्होंने मुँह नहीं दिखाया।

(४)

पंडित गंगाधर अपने घर लक्ष्मी सी बहू लेकर आ गये है, और दो-चार रोज मे उनकी बहिनें और बेटियाँ भी, अपने-अपने घर विदा होने को हैं। गंगाधर शास्त्री की स्त्री पार्बतीबाई ने अपने पति से तकाज़ा किया कि लड़की को विदा मे एक गाय देनी चाहिये। शास्त्री जी के पास एक गाय थी ज़रूर, परन्तु वे उसे देना न चाहते थे। दूसरे दिन कारणवश, वे अपने गॉव की प्रायमरी पाठशाला के पास से निकले, जिसमें पोस्ट-आफिस, स्टाम्प बिक्री की दूकान और एक काइन-हाऊस भी था। उस समय स्कूल के दरवाजे पर कुछ मवेशी नीलाम के लिये खडे थे। एक चौपाया नीलाम पर चढ़ा था और भूले-भटके कुछ लोग उस पर बोली भी लगा रहे थे। स्कूल ऊँचे टीलेपर था, और उसी के नजदीक टीले पर होकर सडक जा रही थी, जिससे गंगाधर शास्त्री जा रहे थे। उन्होंने देखा उस चौपाये के साढ़े-

तीन रुपये लगाये गये। गंगाधर शास्त्री ने यह सोचकर कि बछड़ा चाहे बछिया चार रुपये का महँगा नही पड़ेगा, जोर से पुकारकर चार रुपये लगा दिये। शास्त्रीजी तो चार रुपये लगाकर निकल गये। सन्ध्या के समय काइन-हाऊस का चरवाहा, एक गधा हाँकते हुये शास्त्रीजी के दरवाजे आया और बोला—"लीजिये आप अपनी नीलाम की चीज, चार रुपये से ज्यादा किसी ने नहीं लगाये।"

(५)

इस समय लोगों की भीड़ का क्या कहना। इससे दसवीं भीड़ भी नीलाम की जगह पर न थी। शास्त्रीजी झल्लाकर बोले—"क्या मैंने गधा ख़रीदा है, क्या मै धोबी हूँ?"

"यह मै क्या जानूँ, आपने चार रुपये इसके लगाये थे। नायब तहसीलदार साहब ने आपके नाम पर बोली खत्म कर दी। मुझे तो चार रुपये दीजिये। मै रसीद ला दूँगा, और यह गधा सँभालिये।"

"अरे तो मुझे बताना तो था कि मेरी गधे पर बोली लग रही है।"

"पर आप जब वहाँ ठहरे हो, बोली ख़तम करके नायब साहब आपको ढूँढते भी रहे—पर आपका कही पता न था।"

"भाई मै तो गधा नही लूँगा।"

"तो फिर नायब साहब के पास चलिये।"

"ना रे बाबा, रुपिया चाहे चार के आठ ले लो, पर एक तो मुझे गधा न दो, दूसरे मुझे अब नायब साहब के पास न ले चलो।"

वैतरणीधर के एक स्कूली मित्र नवयुवक ने कहा—"हलवाई

दादा, नायब साहब कोई जानवर थोडे ही है। आप खुद चले जाओ, और उनसे सब साफ-साफ कह दो!

किन्तु शास्त्रीजी इस समय भरे हुये थे, तपाक से बोले—"मैंने तेरी अकल के पीछे सफेदी नही पाई है। अगर नायब साहब जानवर न होता तो मेरे गले मे यह जानवर क्यो बाँधता?"

इतने ही में एक पादरी आगये, शास्त्रीजी को समझाने लगे—"हमारे ईसाई धरम में तो गधा बुरा नही माना जाता।"

गंगाधर शास्त्री यह सोचकर कि गधे का ग्राहक मिल गया, अपनी पगिया का पेच सँभालकर बोले—"भला जी, तो आपके ईसाई धर्म मे गधा कैसा माना जाता है?"

पादरी साहब ने इसे प्रचार का सुन्दर अवसर मान, अपना उपदेश इस प्रकार दिया—"हिन्दुस्तान के गवाँर और गुमराह लोग गधों के गुण नही जानते। ग्रीस देश की कुछ जातियाँ गधो को बहुत पवित्र प्राणी मानती है, और उसकी वहाँ पूजा की जाती है।"

शास्त्रीजी ने बीच ही मे कहा—"धन्य हो पादरी साहब, बड़े वक्त पर आये।"

पादरी साहब कहते गये—"ग्रीस देश मे एक गधे ने, अपने युद्ध में गये हुये स्वामी के प्राणो की रक्षा की थी, अत. वह गधा प्राण-रक्षक और भगवान् के अवतार की तरह माना गया।"

शास्त्रीजी ने काँजी हाऊस के चरवाहे से कहा—"यहाँ एक तरफ बाँध रे भाई गधा, मुझे पादरी साहब का उपदेश सुनने दे।"

फिर वे, अपनी दूकान मे लगे हुये आईने मे अपनी सूरत, पगड़ी और चन्दन देखकर, कुछ खाँसे और फिर पादरी साहब का उपदेश सुनने लगे। पादरी साहब कह रहे थे—"परशिया क राजा ओजस

(Ozus) का एक गधा था, उसे उसने इतना पवित्र माना कि उसके लिये एक मन्दिर बनवा दिया, और फिर सारी जनता, उस खर-प्रतिमा की पूजा करने लगी।"

गंगाधर शास्त्री मन्दिर के नाम से घबडाये, क्योंकि उसके बाद ही शायद पादरी साहब मन्दिर के लिये चन्दा माँगने लगे, अतः उन्होंने कहा—"अजी मन्दिर-वन्दिर का क्या करना है, हम तो यही चाहते है कि आपके धर्म की अच्छी चीज़ मजे मे रहे।"

किन्तु पादरी साहब का भाषण बन्द न था। वे कह रहे थे—"ग्रीस देश मे ही निकन (Nicon) नामका एक गधा-सवार सेनानी, गधे पर चढे हुये ही एक युद्ध जीत गया था। वह व्यक्ति ग्रीस के धार्मिक इतिहास मे विजेता निकन के नाम से प्रसिद्ध है। जब उक्त युद्ध समाप्त हुआ, तब ग्रीस के सम्राट् ने उस गधे का पूरे कद का एक ताँबे का पुतला बनवा दिया जिसके रूप मे उस देश के लोग उस देश की विजय की पूजा किया करे।'

अब शास्त्रीजी अपना धीरज न रोक सके। वे बोले—"पादरी साहब, ले जाओ यह गधा मै आपको दान करता हूँ।"

पादरी साहब ने कहा—"ना मैने तो इतनी बाते इसलिये कही कि जिससे इस पवित्र प्राणी को तुम घर से बाहर न निकालो, और रुपये चुकाकर रख लो।"

इतने ही मे नायब तहसीलदार साहब का चपरासी रुपयों का तकाजा लेकर आगया। गंगाधर हाथ जोड़कर बोले—"मै चार के आठ रुपये देता हूँ और इस गधे के और तुम्हारे सबके पैरों पड़ता हूँ, इस गधे को मेरे यहाँ से ले जाओ।"

पर वे किस की सुनते। शास्त्रीजी से रुपये लिये और वे चलते बने।

(६)

लोगों की शरारत। न तो किसी गाँव का कोई कुम्हार, न कोई धोबी ही वह गधा खरीदे। शास्त्रीजी गधे को दस-पाँच मील दूर छुड़वादे, पर वह ईमान का सच्चा प्राणी फिर सन्ध्या को शास्त्रीजी के खूँटे पर हाजिर! शास्त्रीजी ने देखा, लोगो ने मानों उस गधे को पुनः काँजी-हौस न भेजने की या आसपास के काँजी-हौसवालो ने उस गधे को अपने यहाँ न लेने की कसम खा ली है। दुर्भाग्य, शास्त्रीजी जाति से बन्द कर दिये गये?

—०—

बेगार का दण्ड

मेरी उम्र उस समय ११ वर्ष की थी। माँ विधवा थी, मैं यह बरसों न जान सका कि किसी बालक का पिता होना भी आवश्यक है। किन्तु हर घर मे मै देखता, एक बाप। तब मै अपनी माँ से पूछता, और वह जवाब देती कि मेरा जन्म ऐसी घड़ी में हुआ कि मै अपने पिता को खा गया। मेरी मा के पास दो एकड़ जमीन थी। वह उसे, हरसाल किसी किसान को दे देती और मिले हुये ८-९ मन अनाज में हमारा साम्राज्य चलता रहता।

हम दो भाई-बहिन थे। मै कहता, 'मै अपनी मा का एकलौता बेटा हूँ।' कुन्दन कहती, 'मै अपनी मा की एकलौती लड़की हूँ।' अर्थमन्त्री बनकर मां, शनिवार को बाजार के दिन, जब मुझे दो पैसे देती, और कुन्दन को एक, तो काफ़ी सग्राम मचता। मां की दलील यह थी कि मै लडका हूँ, और मुझे दो पैसे पाने का हक है; कुन्दन तो लड़की है, उसे एक पैसे में ही संतुष्ट रहना चाहिये। मै पूछता—क्यों मा कुन्दन को एक ही पैसे में संतुष्ट क्यों रहना चाहिये, तो मा कहती—बेटा वह लड़की है। और मै न जाने किस झगड़े में पड़ जाता, यानी न जाने किस विचार मे डूब जाता।

मामा, मेरी मां को लड़ाक होने के कारण दुष्टा, मामी के कथनानुसार काम न करने के कारण मूर्ख, और मेरे लिये तथा कुन्दन के लिये मकई के भुने हुये भुट्टों के दाने और ककड़ी के टुकड़े तथा ऐसी चीजे बचाकर रखने के कारण स्वार्थी कहते थे। तब मेरे मन मे यह परिभाषा बनती कि........।

अपने को गालियाँ पडने पर, दुख से बोलनेवाला दुष्ट, दिन भर काम करने के बाद, आधी रात के पश्चात् भी आराम की इच्छा और अपने बाल-बच्चो को देखने के लिये तरसनेवाला मूर्ख और अपने बाल-बच्चों को, अपनी ही खाने की चीजो मे से बचा रखनेवाली स्वार्थी।

मां हम दोनों भाई-बहनों पर मरती परन्तु मरना ही तो सब कुछ न था। पड़ौस के गोकुलप्रसाद भाई देश-भक्त थे, अपने हाथ से सूत कातते थे, अपने ही हाथ से खादी बनाते थे। जब कोई सफेद टोपीवाला हमारे गाँव सिहपुर में आता था, तब वह उन्ही के वहाँ ठहरता था। मालगुज़ार रनविजयसिह गोकुल साहू को, जमीन पर अपनी कुर्सी के बिलकुल पास बैठाते थे। पुलिस थाने के सिपाही गाँव मे किसी पर चोरी या मारपीट का मुकद्दमा बनाने के लिये, गवाह तैयार कर लेने का काम गोकुल साहू को ही सौपते। मालगुजार जादव जाति के सरपंच थे। इस जाति में, विधवा विवाह होता है। सो, मालगुजार जब किसी की स्त्री को, उड़वाकर, नज़राना लेकर किसी दूसरे आदमी को दिलवा देते, तो गोकुल साहू यह कहने के लिये कि, औरत वादी की नही प्रतिवादी की है, पटेल साहब की आज्ञा पर हाजिर रहते। गाँव में अगर किसी का 'इस्टाम्प' लिखना पड़ता, यानी कोई किसी से कर्ज़ लेता, तो लिखा-पढ़ी का काम गोकुल साहू को ही करना पड़ता। यदि कोई गाँव मे बीमार

होता तो दवा गोकुल साहू से पूछी जाती। किसी पर अदालत मे मुकद्दमा चलता, तो कठिनाई मे से निकलने का उपाय गोकुल साहू से पूछा जाता, यदि किसी बैल को पैखुरी की बिमारी हो जाती, यदि किसी गाय का दूध कम हो जाता, यदि किसी आम के झाड़ में कुछ बरसों से फल आना बन्द हो जाता, या किसी के यहाँ कुम्हड़े (काशी-फल) की बेल मे फूल तो आते, किन्तु फल न आते, यदि किसी की चीज गुम गई होती, और शकुन पूछना होता, तो लोगों के अवलम्ब थे गोकुल साहू। इसीलिये जब हमारी मां, हमारे मामा के यहाँ मज़दूरी करती, तब मुझे और कुन्दन को यह हुक्म था कि हम दोनों गोकुल साहू के घर ही रहा करे।

वहाँ हम, गँजिया मे से घास लाकर बछड़ा-बछडी और पडा-पड़ी को डालते, घोड़ी की लीद उठा देते, दिन मे ५-६ बार झाड़ू से चौपाल झाड देते। 'साहू-बऊ'—साहूजी की स्त्री, का टूटे तल्ले का बाहना चमार के यहाँ जुड़वाने ले जाते, साहूजी दिशा-मैदान जाते तो उनका लोटा उठाकर साथ ले जाते, गाँव भर मे साहूजी के हुक्म पर बुला-बुलाकर लाते, साहूजी के बच्चो, और उनके यहाँ आनेवाले मेहमानों के बच्चों के पाखाना होकर आने पर उनके बदन धुलवाते, आदि सेवाये हम दोनो भाई-बहन करते रहते, यह हमारा 'सनातन-धरम' था। इसके बदले मे हमे कुछ न कुछ मिलता। केवल माँ को एक ही बात की निश्चिन्तता रहती, साहूजी, मेरी माँ पर कभी कोई मुकद्दमा न चलवायेगे।

गाँव मे साहूजी का बडा वज़न था। कोई चमार घोडा-घोड़ी पर बैठा जाता होता और वे रास्ते मे मिल जाते तो वह तुरन्त वाहन से उतर, उवाहन होकर, उन्हे झुककर सलाम करता, कोई चिलम पीता होता तो उनके दीखते ही वह छुपा लेता, गाँव की औरतें यदि

पानी के घड़े लिये, कुछ सामान लिये, या खाली हाथ भी लौटती, तो साहूजी के मार्ग मे मिलने पर वे सड़क के किनारे लगी, गाॅव की कॉटो की बाड़ियों की तरफ मुँह करके खड़े हो जाते, जब तक की साहूजी निकल न जाते ।

हमारे काम से अलग, हमारी माँ साहू-बऊ के पैर दाबने जाती थी। तिस पर भी यदि सुबह मेरी माँ जाती हुई गाड़ी या घोड़ा-घोड़ी की सवारी के समय साहूजी को मिल जाती तो दस-पॉच गालियाॅ अपशकुन करने के लिये जरूरी पाती ! क्योकि मेरी माॅ काली थी ! दुनियाॅ मे गोरी शकल का आदमी मिलने से शकुन होते है, काली शकल का आदमी मिलने से शकुन बिगड़ जाता है, यह मैने और कुन्दन ने बचपन ही मे, अंग्रेजो द्वारा भारतीयो के प्रति घृणा की कहानियाँ सुनने के पहले ही जान लिया था ।

एक दिन गाँव का कोटवार आया, और मेरी माॅ से बोला-नायब साहब ने तुझे बुलाया है। नायब तहसीलदार का बुलावा कोई इन्कार कर सके ? उस दिन घर मे खाने को कुछ न था, मामी रूठ गई थी. अत. माँ को ३-४ दिन से मजदूरी से अलग कर दिया था। माॅ ने बचना चाहा, परन्तु कोटवार को रिश्वत मे देने के लिये न तो घर मे आनाज था, न पैसे। चूँकि मेरे मामा इसी गाॅव मे रहते थे, अत. माॅ हर एक मर्द से बेटा, भैया, दादा या काका, और हर स्त्री से बेटी, बाई, मामी या नानी कहने के लिये बाध्य थी। माॅ ने कोटवार को हाथ जोड़कर कहा 'मल्लू भैया, तेरे पाॅव पड़ूँ, मेरे घर मे अनाज का दाना भी नहीं है, न सौगन्ध खाने को एक पैसा; घन भैया की स्त्री (यानी मेरी मामी) ने मेरी मज़दूरी के न पैसे दिये, न मेरे अनाज का मिट्टी का मटका ही वहाँ से उठाने दिया। आज मेरे बच्चे भूखे रहेगे। मुझे छोड़कर किसी और को बेगार मे ले जाओ।'

कोटवार ने डाँटकर कहा—"अरी रमिया ज़रा ज़बान सँभाल कर बोल। क्या तू इतनी बडी आदमिन होगई, जो नायब साहब के बुलाने पर न जायगी ?" "मैं तो आजतक कभी बेगार मे नही गयी भैया।" रमियाँ ने अपनी संचित करुणा आँखों मे लाकर कहा।

"तो अब चल। गाँव मे तू कौन बड़ी पटवारिन है, जो तुझ बेगार मे चलते शरम लगती है।"

"भैया, पटेल दद्दा के मै पैर पड़ लूंगी, मै हाथ जोड़ लूँगी। आज बेगार मेरी हटादो।"

"तेरा बेगार छुड़वा के कौन जूते खायगा। पटेल दद्दा ने तो कही थी, रमियां कभी बेगार मे जाती नहीं। पर गोकुल साहू जी ने चार बेगारियों के नाम दिये थे, उसमे तेरा नाम तो पहला दिया है। चल चल देरी मत कर।" मल्लू कोटवार ने अपना स्वर ज़रा धीमा करके कहा।

अब मेरी माँ सब समझ गई। मेरी मामी और गोकुल साहू की पहचान बहुत पुरानी है। कहने को तो मामा-मामी एक दूसरे के सब कुछ होते है, किन्तु सारा गाँव जानता है कि गोकुल साहू भी मामी के कुछ होते है। और आज तो माँ से मामी नाराज होगई है। इस-लिये गोकुल साहू की अदालत से माँ को यह दण्ड दिया गया है।

आखिर माँ उठी। वह गोकुल साहू के यहाँ गई। उनके पैर पड़े। साहू-बऊ के पैर पड़कर कहा—"मै आज बेगार मे जाती हूँ, बऊ-माँ। नायब साहब ने मुझे भी बुलवा भेजा है। मल्लू कोटवार यह क्या बुलाने खड़ा है।" साहू-बऊ को अचंभा मालूम हुआ।

वे बोली—"दुर पगली, तुझे कौन बेगार मे भेजेगा। बडे आदमी के तो कुत्ते को भी कोई रोके और मारे तो मुक़दमा चल जाय।"

"पर मै कल से बड़े आदमी की कुतिया भी नही रही बऊ-माँ! भाई के यहाँ पेट भरने पर नौकर थी। भौजाई गगा को तो तुम जानती हो। वे रूठ गई है। बस जिस तरह पेट मे अजीरन होने पर सिर दूखने लगता है, उसी तरह गगा-रानी के रूठ जाने पर साहू दादा क्यो न रूठते। नायब साहब से उन्होने कह दिया कि रमियाँ रॉड को बेगार मे बुलवा लो। सो अब जाती हूँ, बऊ-माँ।"

साहू बहू सब रहस्य समझ गई—"तुझसे ग़लती क्या हो गई री!" उन्होने पूछा!

मेरी अम्मा ने कहा—"परसो साँझ, मेरे भैया गये है सुलतानपुर, कल उनकी तहसीली मे, बिना गिने कुम्हार के खपरे उठवा लेने के मामले की पेसी थी। इसीलिये खाना बनाकर उन्हे खिलाया। वे गाड़ी-बैल लेकर रवाना हुये। मै भी घर आई। आते वक्त भौजी ने कह दिया था, मेरा पेट दुखता है, गोकुल साहू से कह देना कोई दवा भिजवा दे। मै क्या जानूँ माँ कि मेरे भैया की गैरहाजरी मे अगर भौजी के पेट को गोकुल साहू की दवा नही मिलेगी तो, वे मेरी नौकरी खाकर पेट अच्छा करेगी, और यह भी मुझे नही मालूम था बऊ माँ कि साहू दादा भी मेरी उस दिन की भूल से मुझे बेगार मे भिजवा देगे। मै घर आई तो, किसन बोला, रामलीलावाले है, देखने जाऊँगा। मेरी अक्कल पै पत्थर पड़े, मै किसन और कुन्दन को लेकर, करिन्दा कक्का के चौपाल पर रासलीला दिखाने चली गई। और भौजी के पेट दूखने की बात बिलकुल भूल गई।"

साहू-बऊ इस रहस्य को जानती थीं। वे इस घटना पर नाराज भी खूब थी। उनकी आँखे और पिसते हुए दाँत साफ कह रहे थे। किन्तु वे माँ के मुँह से सुनकर, अपने मर्द की बदनामी सहन नही कर सकती थी।

बोली—"तो जिसका पेट दूखेगा वो तो नाराज़ होवेगा ही। और साहू जी अगर अपने गिरह की दवा खिलाकर लोगों को चगा करते है तो कौन-सा अपराध करते है।"

इतने मे लल्लू कोटवार पुकार उठा—"चल रमियाँ, अब बहस बन्द कर। दिन चढ़ रहा है। तू भी गाली खायगी, मुझे भी जूते खिलायगी। नायब साहब बड़ा टेढा आदमी है।" मेरी माँ ने मुझे चूमा। कुन्दन की पीठ पर हाथ फेरा, फिर साऊ-बऊ के पाँव छुए, और आँखो मे आँसू भरकर मल्लू कोटवार के पीछे चल दी। जैसे कोई जानवर हो, जो खूँटे से छोड़े जाने पर अपने मालिक के पीछे-पीछे जा रहा हो।

हम दोनो भाई-बहन उठे, और साहू-दादा की चौपाल बदस्तूर होड़ा-होड़ी से झाड़ने लगे।

झाड़ते-झाड़ते कुन्दन ने कहा—"अम्मा तो गई किसन। अपने भी दद्दा होते तो अच्छा होता।"

बिरन, मेरो सावन बीतो जाय !

सावन का महीना है। बच्चों को बरसती फुहारो मे घूमने का लालच होता है। अभी कपडे पहिनाये नही कि तुरन्त मैले, दिन भर कीच लपेटे, गीला बदन, गीले कपड़े। योग साधन के समस्त कष्टो से युक्त, किन्तु कष्टों की जानकारी से मुक्त। नव-जवानो मे जो मशीन हो गये है, उनके लिये बरसता सावन, रक्षा-बन्धन का त्यौहार नही, बन्धन का व्यवहार है। कही आ-जा नही सकते। उठा-पटक, घूम-घाम, गड़बड़-सड़बड़ नही कर सकते। बाणासुर की तरह भुजाओ का बल, और कार्य की उमंग का बोझ लादे! जो भावनाशील तरुण है, उसकी आँखें आसमान मे चलनी ढूढ़े, जिससे छन-छनकर ये सारी बूँदें बन-बनकर आ रही है। ग्रीष्म ने उन्हे, दोपहरी का श्रम-कण-गर्भित स्वाद सिखाया था, वर्षा उन्हें छाया का मौसम देने आ गई। होड़ा-होड़ी है कि उनके मन के भाव अधिक हरे है या जमीन पर ऊगते आते हुये पौधे। उनके मनसूबे ज्यादह हैं या ऊगी हरी-हरी घास। उनका लाल मांस से बना अन्त. करण विश्व के नाप में अधिक गीला है या कूड़े-कर्कट से बनी पृथ्वी का अन्त.करण। बदलता हुआ मौसम, जमीन को अधिक उपजाऊ, क्रियामय, अधिक प्राणमय बनाता है, या

भावना-नरेश का भाव-कोष अधिक उपजाऊ, अधिक रचना कुशल, अधिक प्रतिभाशील है । पृथ्वी की रचना रग-बिरंगी क्षण-क्षण उन्नत, और अधिक विद्रोहिनी, या भावमय मानव के कलम के खिलवाड़। किन्तु प्रकृति का अनुवादक पुरुष, प्रकृति से किस तरह बाज़ी ले। आसमान की तरलाई जब आसमान से जमीन को पतित हो रही हो, उस समय ज़मीन की हरीतिमा का आसमान की ओर दौड़ना, मानों ऊँचों के अध पतन पर नीचे रहनेवाली दुनिया के प्रश्न-चिह्न है। आख़िर महीना सावन का है । आसमान का असमान प्रभु सोगया; किन्तु पृथ्वी का हरियाला देवता, शस्य श्यामला की गोद से जाग उठा है । अभी उस दिन किसी ने कहा—"सरावण का महीना ठहरा । व्रत उपवास तो करने ही चाहिये ।" ठीक भी है । सुरज ढँका कि मानव-शरीरों मे निवास करनेवाला रोग का रावण जागा । सो सावन का महिना था ।

गाये, हरी घास भरपूर न ऊगने पर भी मस्त थी, हरीतिमा देखकर । लड़कियाँ उमर के उठाव पर, जिस तरह मीठे इरादों के लाँबे झूले पर, आँखों की तरलाई से सावन-भादो बना लिया करती थी । अब तो जामन की डाल मे झूला बँधा है, और गीत गा-गाकर वे पेंग बढाती है, और झले रूपी नाव पर, छन-छन इरादों के साथ ऐसी नदी के आर-पार हो लेती है, जिसके की स्नेह की सरिता की तरह, किनारे नही दिखाई देते । सो, नारी जीवन के लक्ष्य की तरह, वे किनारा न दिखाई देने वाले प्रवाह में, अपनी जीवन-नौका डालना सीख रही है । काली ज़मीन और मटमैले आसमान के बीच, दो ही विद्रोह है—एक हरी-हरी ऊग, और हौले-हौले झूलना । पता नही दिन के फूलने से झूले पर पृथ्वी झूल रही है, या पृथ्वी के हरी-हरी होकर झूल उठने से झूलों पर दिन के फूल खिल उठे है ।

इसी समय, मै, झाक उठी। परन्तु झांक के झाकी ही कौनसी थी जिसे मै देखती? दिन का तीन बज रहा था, यानी गांव की बोली में, कोई छ सात हाकनी लम्बा दिन डूबने को बाकी होगा। यह पनघट जाकर पानी लाने का समय था। मै उठी। एक ताबे का घड़ा और पीतल की बटलोई उठाई, और चल पड़ी कुएँ की ओर। पटवारिन होने के कारण, रास्ते मे जो सहेलियां मिली, उनमें से एक ने मेरी बटलोई ले ली।

चतुरिया, गाव के मुकद्दम की लड़की है।

बोली—"सावन आगया, देखो न चिड़ियों के जोडे के जोड़े कैसे उड़ रहे है। और सूखे झाड पर लिपटी इस बेल मे भी कैसे हरे पत्ते आगये है।"

माया एक किसान गूजर की विधवा थी।

बोली—"शाम को, मन्दिर मे, भगवान के झूले की झॉकी देखने चलोगी, क्या पटवारिन जी?" मैने एक उसास ली, और कहॉ—"हाँ, चली चलूँगी।"

मनुष्य की याद की बहुत बुरी आदत है। अपशकुन की तरह वह वक्त बेवक्त नही देखती। कभी बुरे दिनों मे, किसी भली बात की याद पर जी दुखता है। कभी भले दिनो मे, भली बात जी दुखा डालती है। सावन का मौसम ऐसा, जैसे हरी धरती हॅसकर बोल उठेगी। परन्तु अमरसिह मोरी की बगिया मे, जो झूला दीखा कि बस सोई याद जाग उठी। क्या भैया नही आते होंगे? क्या मुझे न ले जायँगे? क्या मै झूले न झूल सकूँगी। क्या 'बहू' पन का बोझ, मर्यादा की मटकी, बड़प्पन की जंजीर उतारकर, मै झूले की पेग पर न गा सकूँगी —

बिरन, मेरो सावन बीतो जाय !

हवा का झोंका, आगे बढ़ बढ़,
लौट-लौट फिर आय ।
एक हिलोर उठे सागर सी,
आँखों चढ़-चढ़ जाय ।
जोर, मरोर, शोर करे ऐसी,
मोसे रोकी न जाय ।
सूखे नभ में बदरवा लौटे
बदरन लौटी बीज ।
सूखी भू, हरयाली लौटी
निकस गई वह तीज ।
आँखों में पीहर की गलियाँ,
मुँह में वीर तेरा नाम ।
जी में, पीहर का मधुर झूलना,
मटमैला वह घाम ।
तेरे पास टुक बैठूँ मैं बीरन
सुख-दुख की करूँ बात ।
पूनों बीते आये न भैया,
सो मेरे वे ही दिन व ही रात ।
कागा बोल स्वागत की बोली,
मैं घट भर के जाऊँ ।
वाको सगुन करूँ मग ठाढ़ी,
अपनो बीरन पाऊँ ।
कन्यादान में दी, पर मत कर,
नी से बीर बिरानी ।

स्वागत करे भरी गगरी;
भरी आँखें पीहर जानो।
देव मनाऊँ करूँ प्रार्थना,
मन राखूं भरमाय।
बीते रात, सबेरे मेरा
बीरन दौड़ा आय।

हम कुएँ पर पहुँची तो, कुआँ खाली न था। कुएँ का तरल कलेजा, तरुणियाँ अपने जीवन-घटो मे खीचे ले रही थी। हट मैंने भी लेज से घडे का मुँह बाधा और उतार दिया कुएँ मे। और याद लगी रही झूले मे। चढती उमर का हर वरदान, अभाव मे शाप की तरह दूख उठता है। चतुरिया ने दोनों बर्तन मेरे सिर पर रख दिये। रसरी ऊपर के घडे पर जयमाला बनाकर डाल दी। उस समय भरे घड़े से मै कह रही थी कि आज तू बीरन के आने का शकुन बन जाना। रास्ते में मन्दिर मिला, तो घडे वाले हाथ को भी थोडी देर खीच कर दोनो हाथ जोड़ कर मैंने कहा—सीता माई, आज मेरा भाई, जरूर आवे! सावन मे भारतीय भाई-बहिनों के अन्त करण बोल उठते है। रास्ते मे चतुरिया और माया, कब अपने-अपने घरों को चली गई मुझे पता ही नही।

दूसरे दिन, मेरे छोटे देवर लाहौर से पढ़कर लौटे तो उनके साथ उनके एक मित्र भी आये। वर्ण श्याम, मुँह पर चेचक के दाग। ओठ मोटे। मुँह पर पाउडर लगाने की आदत चर्रमर्र के काले जूते पहिने। गले मे, लटकती गलपट्टी बाँधते। सिगरेट पीते और अधिकतर रेशम पहिनते। रात को वे दोनों साथी हमारी छोटी कुटरिया मे कुछ दवायें निकालकर न जाने क्या-क्या बनाने लगे।

मैने डरते डरते पूछा—'छोटे कुँअर ! क्या पटाखे बना रहे हो; सावन मे पटाखो का क्या होगा ?'

वे बोले—'बना कर अभी रख देंगे, दिवाली पर बच्चो के काम आवेंगे।'

मैं चुप हो रही। किन्तु मेरे मन मे कुछ सन्देह हो गया। मैने अपने पति से, एक दिन जब वे बहुत थके हुये, मालगुजार के यहाँ से चौपड़ खेल कर लौटे तब बताया कि छोटे कुँअर, अपने दोस्त के साथ पटाखे बना रहे थे। वे बहुत नाराज़ हुये; बोले—'मै ये तमाशे, अपने घर मे नही चलने दूँगा। वह मेरे घर से निकल जाये।'

किन्तु वह सुबह डाटने के इरादे से किसी तरह सो रहे, क्योंकि रात का तीसरा पहर योही हो चला था—

सुबह ज्योही मै अपने चूल्हे की राख लेकर, बाहर डालने निकली अँधरे मे सिपाहियों की एक बड़ी टोली हमारे मकान के आस-पास खड़ी मिली। मैने चुपचाप अपने पति को जगाया, और उन्होने कुँअरजी और उनके मित्र को। किन्तु इतने ही मे पुलिस-इन्सपेक्टर मय सिपाहियो के अन्दर आ गये, और उन्होने मेरे पति को, मेरे देवर को, उनके मित्र को और मुझे गिरफ्तार कर लिया। वह सावन की द्वादशी थी। मेरी गोद मे रामू था। मेरे हथकड़ी नही लगाई गई। बाकी तीनो को हथकड़ियाँ लगी हुई थी।

फिरोज़पुर मे मामला चला। बम बनाने और उस काम मे मदद देने के अपराध मे हम सब दडित हुये। पति को ३॥ वर्ष, कुँअरजी को पॉच वर्ष, उनके मित्र को दो वर्ष और मुझे एक वर्ष की सख्त मज़दूरी की सजा हुई। मै फिरोज़पुर ही की जेल मे रखी गई, किन्तु मुझे अपने पति और देवर के दर्शन जेल मे नही हुये। हाँ, रामू ही मेरे पास था

जो जेल की सड़ी रोटियो पर पाला जाता था। जेल मे मैंने जाना कि वहाँ स्त्री नाम की चीज़ सुरक्षित रहना प्राय. असभव है। जेलर, नायब जेलर, हेड वार्डर, वार्डर और नम्बरदार—ये सब काले साँपो के नाम है, जो मरजी पर चलनेपर अस्मत माँगते हैं और मरज़ी पर न चलने से कष्ट देते है। कायदे किताबो मे लिखने की चीज है, किन्तु जेलो मे तो जेलर ही कायदा है। जेले ऐसी बनी है मानों भाग्य बलात् संकट मे पड़ी हुई कुलवधुओ को वेश्या बनाने के कारखाने हो। जो अस्मत बेचना स्वीकार करे, वह सुखी, जो न करे, वह तीस सेर रोज़ अनाज पीसे। मै तीस सेर पीसती थी और नम्बरदारिन कुलथी नाम की एक गोंड औरत के द्वारा समय-बेसमय पीटी जाती थी। भले घरो में रहने पर, चमड़े पर जो पानी आ जाता है, वही औरतो का काल है यह मैने जेल मे जाना।

एक दिन की बात, जेलर सुखनदन तिवारी, ठीक दोपहरी मे हमारी बैरक मे आया। मै उस समय लोहे के तसले में ज़मीन पर गिरे उबले हुये चावलों को चुन-चुन कर खा रही थी। भूख खूब लगी हुई थी, और पेट भर खाने को न मिलता था। जेलर ने आकर कहा—"रमाबाई, आज तुम्हारे छुटने का कोई कागज़ दफ्तर मे आया है।"

और कुलथी को आज्ञा दी कि मुझे लेकर वह दफ्तर मे आवे।

आज भी सावन का महीना था। मेघराज घिरे थे। बदराह बादल भले घरो पर तो अपना अमृत बाहर बरसाते ही थे, यहाँ इस काली दीवारों के पाप—घर मे भी बेशरमी से अपनी बूँदे बरसा रहे थे। और यह हरियाली दूब, इस संकट-सागर मे न जाने किस लालच से ऊग रही थी। किन्तु मेघ थे वे। मै फिर गा उठी—

'बिरन, मेरो सावन बीतो जाय!'

और रामू को गोदी में लेकर, चली, जेलर के दफ्तर की ओर।

दफ्तर में मेरा टिकट निकाल कर उस पर जेलर ने कुछ लिखा अंग्रेजी मे। मुझे जेल मे हिन्दी मे पढना-लिखना सिखाया गया था। हिन्दी मे जो कुछ भी जेल मे जहाँ-कही लिखा मिलता मै उसे पढ़ लिया करती थी। कुछ लिखने के बाद मेरे कपड़े उतारे गये, जिनमे बरसात के कारण दुर्गन्ध आ रही थी। फिर मुझे तराजू पर चढ़ाकर तोला गया। और फिर जैसा कि नम्बरदारिन किया करती, है वैसे ही अनाज के गोदाम मे ले जाकर नगा कर मेरी तलाशी ली गई। उस समय, कपड़ों को, नम्बरदारिन कुलथी, यह कह कर ले गई कि मै खुद तेरे पहिनने कपड़े लिये आती हू। सालभर रोज़ यह कवायद करने के बाद भी उस दिन न जाने क्यो मेरा शरीर काँपने लगा, और कँप-कँपी बढी, जब मैने देखा कि कुलटा कुलथी देर तक नही आई, किन्तु जब लौट कर आई तब मेरे जेलवाले कपडे लेकर तो नही आई, किन्तु पूछने लगी—

"मुझे तो मिली ही नही वह तुम्हारी कपडो वाली पोटली! तुमने कहा रखदी।"

और उसके पीछे-ही-पीछे जेलर आ गया। मैने अपने को अकेली पाकर हाथ जोड कर जेलर से कहा—"देखो तिवारी भैया, यह सावन है, मै तुम्हारी लाचार बहन हू, मेरी रक्षा करो।"

किन्तु उस नीच ने कुलथी की ओर देखा। और कुलथी ने झपट कर मुझे गिरा दिया। मै ज़ोर से चिल्लाई परन्तु दफ्तर से गोदाम तक लोहे के सीकचों वाले चार दरवाज़े पड़ते है,उनपर पडे हुये ताले तोड़कर स्वयं मेरे साहस के सिवा और कौन आ सके? किन्तु मुझमे साहस? हां, मुझमे साहस! मैने बड़े प्रयत्न के बाद अपनी अस्मत के हत्यारे का गला अपने दांतों से दबोच लिया। तिवारी चिल्लाया। जोर से खून

बह चला! किन्तु हाय! मेरा तो सर्वनाश हो चुका था। कुलथी भयभीत होकर जोर से चिल्लाई। जेलर साहब को बचाओ, दौड़ो। इसी समय अलार्म घण्टी बजी और जेल तथा पुलिस के जवानों ने, जेल मे दल बाँध कर प्रवेश किया। उन्होने बन्दूको के फैर किये।

मजिस्ट्रेट आया। मेरा बयान लिया गया। मैंने मजिस्ट्रेट को सारा सच्चा किस्सा सुना दिया।

जेलर रात को मर गया। इसके बाद मुझ पर मुकदमा चला। मेरा कोई गवाह न था।

प्रारभिक जाँच के बाद सेशन जज के सामने मेरा मुकदमा पेश हुआ। और सावन पूनों के दूसरे दिन, यानी मुजलिमों के दिन, मुझे फिर पाँच वर्ष कारागार की सजा होगई।

× × ×

नया जेलर जयनारायण खडेलवाल बहुत सावधान रहता कि मेरा अपमान न हो। मेरे शेष पाँच वर्ष, जेलर के मरने के बाद, बुरे न गुजरे।

पर मेरे जीवन के 'किन्तु' का मै क्या करूं? अब मै दो बेटों की माँ हूँ। एक मेरे सौभाग्य की देन रामू, और दूसरा मेरे दुर्भाग्य की देन—श्यामू!

× × ×

मै कुलटा हूँ, या मै सती हूँ? यह सवाल मैं समाज में किससे पूछूं? यदि समाज अपने पास न आने दे, तो मै कहाँ जाऊँ? चोरी या कोई गुनाह करके जेल में या कही किसी पतित पंथ की ओर?

× × ×

पाँच वर्ष की सजा काटकर जेल से छूटने के दिन यही विचार दिमाग में चक्कर काट रहे थे। जेल के फाटक के बाहर दरख्तों के पत्ते लहलहा रहे थे। रिमझिम रिमझिम फुहार बरस रही थी। ज़मीन गीली थी, आसमान काला। जेल की गाये, जेल के बाग मे चर रही थी। बेड़ियां पहिने, कैदी बाग मे काम कर रहे थे। कोयल अभी बोल रही थी। सावन का महीना था। पर अब मुझे कौन लेने आने वाला था ? मैंने आम के पेड़ के नीचे, जेल के सामने ज़रा दूर पर, नाले के पुल पर बैठ कर जोर की सास ली—

'बिरन, मेरो सावन बीतो जाय !'

पति को और देवर को मै किस मुँह से ढूँढूँ ? और भाई को भी कौन से साहस से ?

शायद—मेरे लिये एक ही जगह दीख पड़ती है—बाढमयी रावी !!

बरसता सावन बैसाख हो गया

ट्रेन इटारसी स्टेशन पर रुकी नही कि उतरनेवालो की जल्दी और चढनेवालो का उतावलापन ऐसा मुखर हो उठा मानों लक्ष्य पर पहुँचने और लक्ष्य के लिए प्रस्थान दोनो की सम्मिलित होडा-होडी हो ।

रायबहादुर मोहनलाल भार्गव उसी समय प्लेटफार्म पर दीखे और जिस तरह ढाल की ओर पानी अपने-आप सिमटकर चला आता है, उसी तरह मेरे लेखक होने और उनके मेरे भारी प्रशंसक होने के सम्मेलन से बननेवाले दुर्भाग्य के कारण वह मेरे ही डिब्बे मे आ गए। दुर्भाग्य इसीलिए कि युग के लेखक के रूप में अपनी बदनामी के कारण मै लोगो द्वारा तमाशा बनाए जाने की चीज था और राय-बहादुर इतने शीलवान थे कि उम्र के बूढे होकर भी मुझ पर श्रद्धा प्रकट करने का अवसर आने पर उसे प्रकट किए बिना रह नहीं सकते थे ।

गरज यह कि सस्कृत की एक कहावत के अनुसार, मेरे भाग्य की गाड़ी में लिखने की आदत-रूपी बेर की लकड़ी का पहिया लगा था और प्रजा में मीठे तथा राजमें बिके, रायबहादुर के स्वभाव के

दरवाजे पर श्रद्धा-रूपी बेर का झाड था। इस प्रकार इस व्यवहार की दुनिया मे हम एक-दूसरे के रिश्तेदार बन गए थे। जब तक भार्गवजी मुझसे प्र ाम का 'लेन-देन' करके, अपने स्वभाव की परम्परा को निबाहे तब-तक आंखो पर चश्मा चढाए दो नवयुवतियों ने डिब्बे मे प्रवेश किया।

एक का रग सावला था, दूसरी गौरवर्ण। मैंने छुपी आंखो देख लिया कि उनमे से गोरी लडकी के हाथ मे मेरा ताजा उपन्यास 'बिखरती दुनिया' है। मुझ अजनवी को विशुद्ध विलायती कपडो और यूरोपीय बनक मे देख, दूसरीलडकी ने अपना साधारण स्वर कुछ रूखा-सा कर लिया और कालेज की दुनिया मे प्राप्त की हुई थोथी अकड का भौंडा प्रदर्शन अपने नौकर पर करके कहा—"मेरी चट्टिया जरा गीली हो गई है रामधर, इन्हे अपने गमछे से पोछकर पेटी मे रखदे और मेरे खरगोश के चमडेवाले जूते निकाल दे।" किन्तु उसकी बहन ने मानो इस स्वभाव को रोकने के लिए मेरी पुस्तक का पन्ना खोल कर बहुत आहिस्ते से और उसे खूब सम्हालकर उसे दिखाया। शायद उसने मेरा चित्र उसे दिखा दिया और इस तरह बिना बोले मेरा परिचय देकर उसके फूहड़पन को मर्यादा की लगाम लगा दी।

जब से लडकियों ने डिब्बे मे प्रवेश किया मै भी 'करेन्ट हिस्ट्री' नामक अग्रेजी-मासिक पढने का स्वांग भर रहा था, मानो ज्ञान की साधना मे ध्यान-मग्न योगी हूँ। किन्तु मेरी आखे उस समय मेरे कानो पर आ बैठी थी। मै सुनकर देख रहा था और देखने की उन्ही अंगुलियों से वातावरण को छू रहा था, मानो, इतने ही मे सारा छायावाद गद्य हो गया।

रायबहादुर ने अपनी शंख-विनिन्दित ध्वनि में अपनी ओर

मेरा ध्यान खीचते हुए कहा—"हरिकिशनजी, ये दोनों मेरी बेटियां हैं।" साँवली लडकी की तरफ इशारा करते हुए उन्हों ने कहा—"वह मेरी छोटी लडकी है—निर्मला। क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज मे तीसरे वर्ष में पढ़ती है और यह मेरी लडकी है· ···"

उसी बीच फ्रांटियर मेल के आने के कारण देर तक खड़ी रहनेवाली कलकत्ता मेल के लेट होने से लाभ उठाकर इटारसी स्टेशन का फलवाला चीख उठा—"बाबूजी, अनार लोगे? बहुत बढ़िया, ताजे, मीठे, बेदाना।" तभी हाथ जोडकर दूसरी लड़की ने कह दिया—"जी मुझे कमला कहते है।"

"वर्माजी, यह मालवीयजी महाराज की युनिवर्सिटी मे पढती है और आक्सफोर्ड जाने के लिए आसमान सिर पर उठाए हुए है।" रायबहादुर ने 'जा, जा' की आवाज से फलवाले को झिड़कते हुए, अपना वाक्य पूरा करने के लिए मेरी ओर पुन मुखातिब होकर कहा।

रेल के गिरते-उठते सिगनलो की तरह प्रणाम-प्रथा में लड़कियों के गिरते-उठते हाथो का जवाब उसी सभ्यता और उसी व्यवस्था मे देकर, मै लडकियो की ओर मुखातिब हो गया, मानों मैं उनसे कुछ सुनना चाहता हूँ।

बोलने की कला मे हम अपने हृदय को छिपाना इतना सीख गए है कि हम केवल लापरवाही भरे मौन ही मे अपने को अधिक व्यक्त कर पाते है। चौकन्ना मौन भी हृदय छिपाने में कम सहायक नहीं होता। मैने 'करेन्ट-हिस्ट्री' मे अमरीका की 'न्यू हिस्ट्री सोसायटी' की छोटी-सी चौपतिया मार्कर की तरह रखकर उस मासिक को इस तरह बन्द करके रखा, मानो अध्ययन के देवत्व

से उतरकर उन लड़कियों के लिए समय खराब करने का अपराधपूर्ण त्याग मुझे जबरदस्ती करना पड़ रहा हो। मैंने प्रश्न का आधा भाग निर्मला की तरफ, उसका थोडा-सा अंश अपने दाहिने हाथ की हथेली की हस्तरेखाओं की तरफ और उसका शेष सम्पूर्ण उत्तरार्ध कमला की तरफ देखते हुए पूछा—"आज आप लोग कहां जा रहे हैं?" कमला ने कहा—"मै जबलपुर जा रही हूँ, मेरी एक मित्र की शादी है।" निर्मला बोली—"मै कलकत्ता जाऊँगी और वहा एम० सी० सी० का मैच देखकर शाति-निकेतन चली जाऊँगी। पापा सतना मे उतर जाएँगे।"

मैंने अत्यन्त प्रतिष्ठा और सभ्यता से अपना सिगार निकालते हुए निर्मला से पूछा—"ओ हो, तो आप अकेली आधा हिन्दुस्तान छानेगी?"

निर्मला—"उसमे आश्चर्य की कौनसी बात है?"

कमला—"और वह भी आपको? आपके 'बिखरती दुनिया' की बेलारानी, तो अपने कालेज के साथी के साथ लदन जाती है।"

रायबहादुर भी इस समय चुप न रहे, बहुत मीठे लहजे मे किन्तु सुलभ डक मारने की मनोवृत्ति के साथ, अपनी पुत्री कमला को लक्ष्य कर बोले—"सगमरमर के बने महल मे भी किसी कोने मिट्टी के चूल्हे तो होते ही है कम्मू। इसमें हरिकिशनजी का क्या अपराध है? हिन्दू-समाज का दोजख तो उसी तरह का बना हुआ है।"

मैं इस समय रेलवे कम्पार्टमेंट मे संयोग से बननेवाली इस कहानी को ही सुनना चाहता था। अपनी बात कहकर तीन स्वभावों के तिरंगे विक्षेप की त्रिवेणी बनने देना मुझे अभीष्ट न था।

मैंने देखा कमला को अपने पिताजी की चुटकी पसन्द न थी। निर्मला इस तरह मुसका उठी, मानो वह अपने पिता के ठेठ पुराने

और बेघड़े स्वभाव को ध्यान देने की वस्तु नही समझती थी। किन्तु मेरे मौन, मेरे संकोच-भरे हाव-भाव, और मेरे गम खाने मे रायबहादुर की अफसरी उजड्डता को हरा चारा दे दिया। अपनी सहिष्णुता, सुधार-प्रियता और सामाजिक क्रान्तिवादिता के प्रवचन का सुन्दर अवसर जान, उन्होने मुझे एक लम्बा उपदेश दे डाला। बोले—"मेरा आदर्श सामाजिक सुधार नही, सामाजिक क्राति है। क्रान्तिकारी लेखक के नाते मेरे घर मे आपकी खूब चर्चा होती है। मेरे अग्रेज और ईसाई दोस्त मेरे घर आते है, खाना खाते है, हमारे साथ एक ही टेबिल पर। संतति-नियमन और सेक्स-हाईजीन की किताबे मैने स्वयं खरीद-कर इन लड़कियो को लाकर दी है। निर्मला अपनी तसवीरों के अल-बम सजाते ही, मुझे दिखाए बिना नही रहती और आप जानते है, जवान पढी-लिखी लडकियो के अलबम मे क्या-क्या खुराफात नही होते। और उन तसवीरो के नीचे अपने मनचाहे एक-एक वाक्य लिखकर सारी शरारत एक कविता बना दी जाती है। मै जात-पात भी नही मानता। अपनी भतीजी की शादी मै पंजाब के एक सिवीलियन भोलानाथ सिंह के साथ कर चुका हुं। वह कलाकार है। कमला और निर्मला के पत्र-व्यवहार न जाने कहां-कहा होते है। आखिर लडकियो का दूल्हा बेमौसम के ओलों की तरह बरसाया क्यो जाए? सूरज की तरह उसकी शक्ल, उसकी पहचान, उसके आने के घन्टो और मिनटों की ठीक जानकारी उनक पास क्यो न हो? मैं तो औरतों की व्यक्तिगत आजादी का खूब कायल हूं। शायद निर्मला शांतिनिकेतन जाकर अपना शौहर चुन आए।

यहां निर्मला को झेंपने के लिए अकेला छोडकर, हम सबने कहकहा लगाया और रायबहादुर मेरी खिड़की की कांच में अपनी

शक्ल देखते हुए बोले—"सच बात तो यों है वर्माजी कि आप लोग किताब में लिखते है और हम लोग उसपर अमल करते है। बारीक-खयाली या आजादी को जबान या कलम पर उतारना एक बात है मगर उसे अपनी जिन्दगी पर उतारकर जिल्लतें, परेशानियां और अपमान आमंत्रित करना एक बिलकुल दूसरी बात। सच मानिए राम न हो तो रामायण किसे कहे ?"

इस तरह मीठी जबान, सभ्यतापूर्ण व्यवहार और मेरे प्रति रहने-वाली श्रद्धा के त्रिकोणकृति घेरे मे मेरी अवज्ञा रायबहादुर का उपदेश बनकर बढ़ी चली आ रही थी। मेरा मन उस समय मुझमें कुछ ढूँढने लगा। भार्गवजी की बात से यह मालूम हो चुका था कि उनकी दोनों लडकियां कुआरी है। मैंने रायबहादुर से डरते-डरते कहा—"जवानी की अल्हडता से इनकार तो नही किया जा सकता। आखिर हम नौजवानों को आप-जैसे बूढ़ो से ऐसी बाते तो पूछ ही लेनी चाहिए जिससे पता चल जाए कि कही हम गुमराह तो नही हो चले।"

रायबहादुर को यह समझौता भी स्वीकार न था। बोले—"मैं अपनी लड़कियो पर सन्देह कर ही नही सकता। बाल डान्स मे सिनेमा मे, और अफसरी मजमो मे ये हर जगह जाती है। पार्टियों मे अपने मनमाने टेबिलो पर, मनचाहे साथियो के साथ बैठती हैं। आखिर एजूकेशन के मानी क्या है, वर्माजी ? सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा न कोई थी, न कोई होगी। वे सब ये ही इस जमाने की पढी-लिखी लड़कियां है। इनका मुसकुराना, हँसना, मिलना-जुलना, इसीसे तो समाज की आगे की परम्परा बनेगी।"

मैंने मानसिक सतह के आंगन मे खड़े होकर, ईश्वर से एक ऐसी कल्पना उधार देने की मांग की जो इस समय रायबहादुर का प्रश्नपत्र

बन सके। भिखारी को भीख न मिलने से शायद ही इतनी कडवाहट महसूस होती हो, जितनी चिन्तन-सेवक को, कठिन परिस्थिति मे कुछ सूझ न पडने से हुआ करती है। मै खुली आखों अनदेखता-सा बैठा था कि निर्मला ने अपने फलों के झाबे मे से चीकू छील-छीलकर मुझे देना शुरू किया और कमला ने सेव तराशकर मेरी चादर पर तश्तरी रखदी और हस-हसकर खूब बाते करने लगी।

मै मुसकुराता ही नही था, खिल-खिलाता भी था। मेरा आत्मभिमान यह गवारा नही करता था कि मै रायबहादुर के द्वारा होनेवाली अवज्ञा के बावजूद भी फल खाने से इनकार कर दूँ क्योंकि फलों के मिठास के साथ मै पाए हुए अपमान को स्वादीला बना लेना चाहता था।

तभी गाड़ी एक नदी पर से गुजरी और उससे दूर बड़ा लम्बा बोगदा (सुरंग) दीखा। उस अपमान से मुझमे एक बेकाबू उद्दंडता का भाव जागा। ज्योंही बोगदे का अंधेरा आया और मेरे डिब्बे में बिजली के अभाव मे एक दूसरे की शक्लें दीखनी बन्द हुईं त्योंही मैंने बोगदे के बीचोबीच पहुंचकर 'करेन्ट हिस्ट्री' की किताबको उठाकर सुनाई पड़ सकनेवाले स्वर मे जोर से चूमा और चुपचाप रख दिया।

बोगदे से ज्योही गाडी बाहर आई और स्टेशन आने को हुआ त्योंही बरसता सावन फिर बैसाख हो गया। कमला निर्मला को क्रोध से घूर रही थी, निर्मला कमला को घृणा से देख रही थी और रायबहादुर लाल चेहरा किए अपनी दोनों लड़कियों को बारी-बारी से भांप रहे थे।

मेरा स्टेशन आ गया। बरस से अधिक मंहगे पड़नेवाले उन दस मिनटों के बाद में उतर आया। मुझ से कोई नहीं बोला।

मै अपनी 'करेन्ट-हिस्ट्री' वाली पुस्तक वही छोड़ आया, वही वहा छूटने की हकदार थी। चूँकि इस महाप्रलय के अन्तिम अध्याय मे उसका भी पचास फीसदी हिस्सा था, मैने उसपर पेन्सिल से रायबहादुर के प्रवचन का यह वाक्य उद्धृत कर दिया था–'बारीक खयाली या आजादी को जबान या कलम पर उतारना एक बात है, मगर उसे अपनी जिन्दगी पर उतारकर जिल्लते, परेशानी और अपना अपमान आमन्त्रित करना एक बिलकुल दूसरी बात।'

महँगी पहिचान

वह जाडे में बरसात का दिन था।

पानी, आँधी भी, जाड़ा, थरथराहट, बिस्तरा बहुत प्यारा, किन्तु वह भी ठडा।

पैसेन्जर गाड़ी, सोचा था, आधी रात को घर से मेल पकड़ने से, तो रास्ते मे कही बदल लेना अच्छा होगा। सो, पैसेजर गाडी।

जीवन का मूल्य कूतने की उचित जगह। वे आते है, वे चले, और वे चले गये। वे मुझे जानते है, किन्तु उँह, कौन बोले, मै बोलूँ तो शायद उनका उपेक्षा का लिहाफ उघड़ जाय। सर्दी जो पड़ रही है। एक है, गो जानते बिलकुल नही, किन्तु वे अवसर को हाथ से कैसे जाने दे। भला अपना स्टेशन आने पर कोई उतरना भूलता है!

'प्रणाम जी!'

'प्रणाम साहब!'

'आज आपके दर्शन पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई।'

'कृपा है आपकी।'

'आपका देवत्व प्रसिद्ध है।'

'जी मैं उसी को नही जानता।'

'किसे ?'

'देवत्व को !'

एक मुसाफिर की ओर मुखातिब होकर–

'ये महान योगी हैं। बड़े साहित्यिक हैं। हिन्दी मे तो दुनियाँ इनका लोहा मानती है · ।'

'आप बैठ जाइये, तो लोग मेरा और आपका साथ-साथ लोहा मानने लगेंगे।'

'मै मजाक नही करता, महाशयजी।'

'पर मुझे तो मजाक करने दीजिये कृपानाथ !'

"'लिलार की चौखट' के पश्चात् आपने कुछ और लिखा ?'

'जी, 'लिलार की चौखट' नही, 'ललाट की रेखाएँ'—जी, दो ही किताबे छपी हैं।'

'जी भूलगया। 'ललाट की रेखाएँ', जरा उनके मिलने का पता लिखा दीजिये·····और·····।'

बार-बार खिडकी से बाहर झाँके ! सन्देह, बेचैनी, कौन है ?

ओह, टिकट कलेक्टर !

'अरे सप्रे तुम यहाँ ?'

'जी, मै तो बीना-कटनी लाइन मे ही बूढ़ा हो गया।' फिर उससे—'टिकट महाशय ?'

वे मुझसे बोले, 'दस रुपये का नोट है, चेज दे दे, प्राण बच जाये।'

मैंने 'सप्रे' से कहा—मै दे दूँ ? कोई वक्त का मारा है—'

आप बोले—'मुझे अहसान नही चाहिए। जहर हज़म कर सकता हूँ, किन्तु अहसान नही।'

मैंने कैलाश से कहा—'पैसे दे दो।' गिनकर फुटकर दे दिये। उन्होंने टिकट कलेक्टर को तीन रुपये बारह आने दे दिये।

अगला स्टेशन। मैंने पैसेन्जर से मेल बदलना चाहा। बीना से ग्वालियर, दस-दस के चार नोट, और कुछ और।

कैलाश के साथ पुलीस वाला—"जालीनोट' आपने दिया था ?'

और यह प्रश्न बूढ़े शरीर, खादी वस्त्र, और समूचे आदर्श-वाद पर।

कैलाश—'बडे मक्कार लोग होते हैं !'

'क्यों ?' खादीवाले को यह प्रश्न किया जाता है। क्या खादी पर मक्कार होने का विश्वास, कोई छोटी चीज है ?

मानों, वैष्णव गोमास खाता है ?

किन्तु क्या मैं यह नहीं जानता, कि खादी पहिनकर, युग का 'मैं' क्या-क्या करने लगा हूँ ?

यह रोज़गारी शोहदे का समर्थन नहीं है, वेष के रोजगारी होने पर पड़नेवाली जूतियाँ हैं।

मेरा स्टेशन आ गया। रेल के डिब्बे के लोगों ने उच्चस्वर से कहा—'महात्मा गाँधी की जय।'

मैंने सर नीचा कर लिया !

वन्य-प्रदेश

प्रवेश

आगन्तुक—'बडे कष्टो से यहाँ तक आई हूँ।'

आम—'क्यों बहिन ?'

आगन्तुक—'बड़े कष्ट भोगे है।'

आम—राम राम ! कैसे बहिन ?

आग०—'गरीब माँ-बाप की बेटी हूँ।'

आम—'हम भी गरीब ही है बहिन ! मजे मे तो हो ?

आग०—'मजे में ! मेरी क्या-क्या दुर्गति नही हुई !'

आम—'भला ! किन कष्टों मे पड़ गई थी ?'

आग०—'मुझे मेरी माता की गोद मे से छीना !'

आम—'छीना ? किसने छीना ? क्यों छीना ? कब छीना ?'

आग०—'मनुष्य ने, स्वार्थ के लिये, युग बीत गये !'

आम—'मनुष्य ! पापी मनुष्य ! फिर—'

आग०—'फिर मै बड़े-बड़े भट्टों मे जलाई गई।'

सागौन—'अब मत सुनाओ बहिन !'

इमली—‘कहो बहिन, फिर ?’

पीपल—(इमली से) ‘दूसरो का दुख सुनने मे क्यों जी लगाती हो ? क्यो भला मालूम होता है ?’

बेर—(पीपल से) ‘मजा आता है !’ (आगन्तुक से) ‘अजी तुम कहो चुप क्यों होगई ।’

आम—‘उसके हिये का वजन सा उतर जायगा। दुख के दुख की बाते सुनलो ।’

बबूल—‘अजी जाने भी दो, कहाँ की बातों मे पड़े हो ।’

आम—‘कहो बहिन ।’

आगन्तुक—‘जब मै खूब जलाई जा चुकी, तब मै बड़े-बड़े घनो से कूटी गई !’

आम—‘सुनो ! सुनो !’

आगन्तुक—‘पर जब तक मेरा शरीर पूरा झुका नही, मै बराबर भट्टों मे झोंकी जाती और हथौडों की मार खाती रही। मेरे लाल मुँह पर, उस समय तक चोटे मारी जाती, जब तक वह काला न पड़ जाता।’

पलाश—‘ओह ! सुना भाई शिरीष, यह बेचारी पहले बड़ी सुर्ख रही होगी।’

शिरीष—‘तुम सुनते चलो !’

आम—‘पापियो ने छोडा कब बहिन ?’

आगन्तुक—‘उन्होने मेरे कण्ठ को ऐसा बेधा, जैसे फाँसी दी जाती हो। यह गले का छिद्र देखती हो।’

पीपल—‘पापी कही के !’

आम—(आँसू भर कर) ‘ओह !’

सागौन—'मुझसे तो सुना नही जाता, बहिन ! आखिर उन पापियों ने छोड़ा कब ?'

आगन्तुक—उन्होंने मेरे मुँह को पानी मे डुबो-डुबोकर फिर जलाया, फिर कूटा।'

आम—'कूटा सा नही लगता, मुँह तो सुहावना है बहिन। बड़ी प्यारी दीखती हो।'

इमली—'देखना भगवान के लिये !'

आगन्तुक—'नही जी यह तो रोगनवाला पानी लगने से चमक रहा है।'

सागौन—'कैसी बातें करती हो, परसो जो राजकुमार घोड़े पर चढ़ा गया, उसकी तलवार की मूठ तुम्हारे मुँह जैसी चमकती थी।'

आगन्तुक—'नही वह चाँदी की होगी।'

सागौन—'तब तुम ?'

आग०—'मै तो लोहे की हूँ।'

पलाश—'लोहे की ? तब कलूटी रूप का गर्व क्यों करती थी।'

आम—'सभ्यो जैसे बोलो।'

शिरीष—(पलाश से) 'हम असभ्य लोग चुप ही क्यों न रहे ?'

इमली—(आगन्तुक से) 'तब तो तुम भीतर से काली होगी।'

बेर—'हाँ, तुम्हारे बीजों जैसी ! क्यों जीजी ?'

इमली—(बेर से) 'चुपका रह, छोटा मुँह बडी बात !' (फिर आगन्तुक से) 'हाँ, क्यों जी, भीतर ?'

आगन्तुक—(इमली से) भीतर की भगवान जाने।'

(फिर आम से) 'हाँ तो आम भैया मै यहाँ विपद् की मारी आई हूँ।'

इमली—(स्वगत) 'जा उसी की गले लग। मुंह लगाने की देर है कि ओछे सिर चढे।' (आगन्तुक से) 'मुझे तुम्हारे साथ बड़ी सहानुभूति है, जाओ, जरा देर, इस पास के बाग में विश्राम करो, वहाँ ठण्डी जगह है, बादशाह का बाग है, माली होगा, जरा ओट मे, चमेली की कुजों मे छुप रहना।'

आगन्तुक—'नही भाई, 'फोरे जोग कपार हमारा।'

पलाश—(शिरीष से) 'पर वह घनों से भी तो फूटा है? क्यो जी?'

आम—'क्यों बहिन?'

आग०—'मै तो तुम्हारी शरण आई हूँ। दुखिया हूँ, दीना हूँ। पर मेरी कोई नही सुनता। पीपल अलग ही फड़फड़ा रहा है, बेर अलग ही बर्रा रहा है। मै किसके पास जाऊँ? किसको हिये की सुनाऊँ? तुम पथिकों मे से तपे हुओ को खीच कर अपनी गहरी छायावाली गोद मे ठण्डक देते हो। और भूखों को अपने मीठे फलों से तृप्त करते हो। यह भी देखती हूँ कि तुम्हारी आराधना पत्थरों से की जाती है, किन्तु ऐसों के लिये भी न तुम्हारी छाया में कमी होती है, न फलो के रस मे ही। उसमें कड़ुआपन नहीं आता। मेरी आराधना तो एक सेविका की तरह शरण मे आना है। क्या मै तुम्हारी दया के दिव्य द्वार में प्रवेश न कर पाऊँगी?'

शिरीष—(स्वगत) 'दरवाजा टुकडे-टुकड़े न होजाय।' (प्रकट आगन्तुक से) 'अजी इस पीपल को तो अपने 'गणानान्त्वा गणपति गुहवा' से कभी फुरसत नही मिलती।'

पलाश—'साथ ही वह जंगलियों के 'पब्लीसिटी ब्यूरो' का सेक्रेटरी है, फड़फड़ावे क्यो न?'

आग०—'अर्थात्।'

शिरीष—'अर्थात् डुग्गीवाला भी है। जो बाते तुमने यहाँ कहीं, बस उसने सारे जंगल मे हम लोगों की ज़बान मे सब कह सुनाईं।'

आम—(आगन्तुक से) 'तो बहन तुम जो कहो, सो मैं करने को तैयार हूँ।'

आग०—'मेरे हाथ-पाँव तो है नही।'

इमली—(स्वगत) 'कौन वर ढूढ़ने जाना है।'

आम—(आगन्तुक से सहानुभूति प्रगट करते हुए) 'हाँ बहिन, कष्ट में तो हो।'

आग०—'कण्ठ मे देखो कितना बड़ा छिद्र है।'

आम—'हाँ है तो, यह पापी मनुष्यों के पाप का स्मारक है।'

आग०—(स्वगत) 'और तुम्हारी जड-पीड़ से घातक भी। (प्रगट) बस इसी से मेरी प्रार्थना है, यदि तुमसे कोई बलवान, अपनी भुजा का सहारा दे दे तो मेरी जिन्दगी बन जाय। साधु-कपास मनुष्य जाति की लज्जा की रक्षा करता है।'

आम—'यह कौन सी बड़ी बात है।'

आग०—'मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ और पैर पड़ती हूँ, शरण में आई हूँ, दूर से। इज्जत से चल फिर सकने पर, मेरा जीवन तुम्हारे प्रति रहने वाली कृतज्ञता का सजीव स्वरूप होगा। मुझे केवल अपना एक छोटा सा टुकडा दे दो। मज़बूत भुजा का सहारा मिले।'

पीपल—'परोपकार पुण्याय।'

इमली—(पीपल की ओर मुँह करके) 'यः परः पर एव स' (आगन्तुक से) 'अब हमारी सलाह होगी। तुम जाओ।'

मसलहत

आम—'क्यों भाई क्या राय है? साफ साफ कहो, बनावट न हो।'

पीपल—'दुखी का दुख ज़रूर बंटाना चाहिये।'

शिरीष—(पलाश से) 'इसके दाँत देखते हो।'

पलाश—(स्वगत) 'हडम्बा कही की! घूर-घूर कर देखती कैसी है, मानों हमे खाने आई है।'

इमली—(गंभीरता से) 'भाई अचानक आने वाले पर भरोसा करे सो पशु।'

शिरीष—'हमारा अनुमोदन।'

पलाश—'डिटो।'

पीपल—'हमारा विरोध, दुखी को सहारा देना चाहिये।'

बेर—'जीजी' तुम तो स्त्री जाति हो। तुम इतनी पत्थर क्यों होती हो?'

इमली—'मै ठीक कहती हूँ।'

आम—'खूब सोच लो। आश्रित तो जरूर है। अधिक सहारा भी नही चाहता। थोड़ा सा दे देना होगा।'

आगन्तुक—(आगे बढकर, लौट कर) 'बिलकुल थोड़ा सा बाबा।'

बबूल—'इमली ठीक कहती है।'

खैर—'हमारी भी यही सलाह है।'

बेर—'निष्ठुर कही के!' (पलाश से) 'क्यों जी?'

पलाश—'चल दूर हो! लिपट मत पड़ना! तेरे परसों के आलिगन के काँटे, ये अभी तक बीनता हूँ। नही जी मै इस अकल-मदिनी का हामी नही, तुम्हारी बात सच है।'

आम—'सच कैसे? कोई सबब है?'

खैर—(आगन्तुक से) 'यह समय तुम्हारे चुप रह कर सुनने का है।' (आम से) 'मुझे तो तुम्हारी उदारता से डर मालूम होता है। परसों तुमने उस राजकुमार को बेंत लेकर निशिगन्ध क्यारियों में

जाते समय हमे नही रोकने दिया, उसने क्रोध में आकर बेत से सब कोमल झाडो के गले काट डाले !'

बबूल—'और अपनी ही भुजा से, आपने फौजी अफ़सर का घोड़ा बँधवाया था, बस भुजा ही खो बैठे।'

जामुन—'बरगद ने उस महन्त के हाथी को शरण दी। मैने उसी के कहने मे आकर, अपने कोमल पत्ते उसे तोडने दिये। तकदीर की बात, उसने मेरी बडी-बडी भुजायें तोड़ दी।'

इमली—'इसके प्रति दया करने का नतीजा न जाने कैसा हो !'

पलाश—'क्यों जी, इसके गले से आर-पार दीखता है, इससे इसकी बात का कोई ठिकाना नही। और इसके दाँत तो बडे-बडे है ही ?'

पीपल—'परन्तु बह जाने के डर से गंगा-स्नान कौन छोड़ता है ?'

इमली—'जी तोभी, अनजानसे, गहरे मे, बेसमझे गहरी डुबकियाँ लगाने ही से, गंगा-स्नान का पुण्य नही मिलता।'

शिरीष—'इसलिये हम कहते है कि वह हमारी छाया-गंगा मे, और हम उसकी दर्शन-गगा मे स्नान करे। उसकी माँग-गंगा मे कौन कूदे।'

पलाश—'पाव दर्जन गगाये तो हो गई !'

खैर—'हाँ, उसकी आकाक्षा की खाई में, बिना समझे-बूझे, गोता लगाने के लिये हम मे से कोई आगे न बढ़े !'

आम—'उसकी माँग अस्वीकृत की जावेगी ?'

खैर, बबूल, जामुन—(एक साथ) 'हाँ !'

पलाश—'डिटो।'

आम—'किस अपराध पर वह दु ख भोगिनी है, मनुष्यों ने उस पर अनंत अत्याचार किये है।'

शिरीष---'वे मनुष्य आम ही के मधुर फलों से सतुष्ट हुये है।'

पीपल---'कृष्ण ! कृष्ण ! '

इमली---(पीपल से) 'आप ही के पुराणो से बहकाये जाने पर, अपना गला कटाने वाले गेहुओं और चनों को खाकर, वे मनुष्य संतुष्ट हुये है।'

पलाश---(पीपल से) 'आप तो इस समय 'सुमुखश्चैक-दन्तश्च' पर फ़िदा है।'

आम---'कोई सहारा न दे, मै देता हूँ---'

जामुन---'कृपा करो, कहा मानों---'

इमली---'कही तुम्हारी दया का दंड समस्त पादप-परिवार को न भोगना पडे।'

आग०---'(आम से) नही भैया, तुम्हे कष्ट नहीं दूँगी। तुम सन्त हो। सभी तुम्हे सताते है।'

इमली---'तो तुम और कही घूम आओ बहिन ! हम जब तक मसलहत करते है।'

आम---'हाँ, तुम घूम लो बहन, हम शरण देने की कोशिश करेंगे।'

आग०---अच्छा घूम लेती हूँ। भैया मै तुम्हारी शरण हूँ। दुखिनी के देवता तुम्हीं हो (जाने लगती है)।

जामुन---'बहन, तुम्हारा नाम ?'

आग०---'पूछकर क्या करोगी। मै तुम्हारी गुलाम हूँ। दाँतों से भूमि खोद कर, भीख माँगती हूँ।'

जामुन---'नाम बतलाओ पुकारने मे काम आयेगा !' (सब उसकी तरफ़ देखते है, वह थोड़ी देर चुप रहने के बाद कहती है)

आग०—'मेरा नाम छोटा सा है, कुमारी परशु। ग़रीबिन हूँ भैया।'

सब—'परशु !'

(सब नाम सुनकर चौकते है)

पलाश—'वाह क्या मनोहर नाम है।'

भेद

(कुमारी परशु इधर-उधर घूमती हुई बेर के पास जाती है, वह पुकारती है।)

बेर—'अजी सुनोगी कहाँ छलाँगे मार रही हो।

परशु—'आई बहन, भला ! तुम्हारी छाया तो बड़ी मनोहर है।'

बेर—'नही जी मेरी छाया की कौन प्रशसा करता है ?'

परशु—'वाह ! न अधिक धूप न अधिक ठन्ड। सर्दी के दिन ठहरे।'

बेर—(स्वगत) 'कितनी भलीमानस है मेरे गुणों को जानती है। (प्रगट) बहिन मै तुमसे एक बात कहूँ ?

परशु—'कहो बहिन ! अहा ! तुम्हारे फल कितने मीठे है।'

बेर—'मेरे जी में एक आग जल रही है।'

परशु—'अच्छा ! कैसी ?'

बेर—'ये सब लोग मुझसे नफरत करते है।'

परशु—'क्यों ? बुरा कहते है। मुझे चाहे कोई कुन्द अक्ल ही भले ही कहे, मुझे तो तुममे नफरत करने लायक कुछ नही दीख पड़ता।'

बेर—'पास ही यह केले का झाड़ देखती हो न, इसे मै प्यार करने लगी। इसके फल बहुत रसीले तो नही, पर मेरे फलो जैसा कुछ

स्वाद होता है। फलने मे यह भी अभागा, जिन्दगी मे एक ही बार फलता है। सो भी थोड़ा सा। लोगो को इससे बड़ी शिकायत है। परोपकार तो जानता ही नही, बिकता है महँगा। पर एक तो पास पाकर, दूसरे अपने जैसा एकाध गुण देख कर, और तीसरे लोगों को, अपना कृतज्ञता-भाजन बनाये रखना जरूरी है। यह जानकर मैंने कहा, आओ हम तुम हिले मिले।

कुमारी परशु—'अच्छा किया!'

बेर—'अजी क्या अच्छा किया। कायर कही का। रो पड़ा। बोला—'तू वहाँ पधार, तेरे प्रेम से मेरा पेट फट गया, तू ने मेरी छाती फाड डाली, सब अग फाड डाले।'

कुमारी परशु—'ऐसी कृतघ्नता उसे न करनी थी, प्यार का बदला घृणा नही होता।'

बेर—'अजी ये पुरुष होते ही बडे वैसे है, तिस पर यह निखट्टू तो अपनी सुन्दरता पर मरा जाता है।'

कुमारी परशु—'इसे सुन्दर कौन कहते है?'

बेर—'वे ही स्वयं प्रशसित पुरुष महाराज! कहो इस घृणा को मैं कैसे बरदाश्त करूँ?'

कुमारी परशु—'केले की बात जाने दो, पुरुष तो तुम्हारी छाया मे आकर फल खाते है, वे तो कृतघ्न न होगे?'

बेर—'नही जीजी, एक पुरुष की बात सुनो। उसने सुबह से दोपहर तक मेरे फल खाये, जाते समय एक छोटा सा काँटा लग गया। बोला, बड़ी मुश्किल से निकलेगा, दुष्ट बेर का यह काँटा!

कुमारी परशु—वह कोई देहाती होगा।'

बेर—'शहर के और भी पापी! एक शहर वाला बीमार होकर यहाँ से गुजरा। मेरे निकट के आम के झाड़ के नीचे उसकी डोली

उतारी गई। उसे कहीं चिकित्सा के लिये ले जा रहे थे। बेचारा खूब भूखा था। आम के पास उसकी कच्ची अमियाँ लगी थी, पर उसने एक न टपकाई। पर मैं इतनी निठुर कैसे हो जाती? हवा के गहरे झोंको से मेरी डाली हिली। मैंने धीरे से अपने तीन-चार फल उसके निकट गिरा दिये। वह फल खा गया। वह अभागा बेहोश होगया। उसके साथी पास आये, कहने लगे बेर खाने से यह हुआ।'

कुमारी परशु—'यह लो!'

बेर—'अजी एक कोई वैद्य और पंडित दीख पड़ता था। मोटर का चक्का अपने सिर से लपेटे था।'

कुमारी परशु—'मोटर का चक्का!'

बेर—'हाँ जी बड़ी भारी पगिया, वह बोला क्यो नाहक यहाँ डोली उतारी—"कुपथ्य बदरी फलम्।"

कुमारी परशु—'राम राम!'

बेर—'इसके बाद, यह सारा जगल मुझे धिक्कारने लगा, बोला तूने उसके प्राण लिये। बहिन मै परोपकार करने से कैसे चूकती! बस इसीलिये मुझे इन लोगो से नफरत है!'

कुमारी परशु—'बेचारे बुरे तो नही है। पर तुम उन सबमें समझदार दीखती हो।'

बेर—'क्या मैं तुम्हारे काम आ सकती हूँ।'

कुमारी परशु—'ज़रूर!'

बेर—'पर दो बाते माननी होंगी।'

कुमारी परशु—'कौन कौन?'

बेर—'एक तो तुम्हे यह दिखाना होगा कि तुम्हे सहायता देने

से मुझे क्या मिलेगा, दूसरे, मैं इन सबको, इनकी कृतघ्नता के लिये रुला सकूँ, ऐसी युक्ति बतलानी पड़ेगी।'

कुमारी परशु—'मैं तो बहिन ऐसी कोई युक्ति नहीं जानती कि कृतघ्नता करने वालों को रुला सकूँ, हाँ,तुम यदि कोई युक्ति निकालोगी तो उसमे साथ दे सकती हूँ, इसके सिवा इन लोगो की बातो पर ध्यान न देना चाहिये। "तुलसी बुरो न मानिये जो गवाँर कहि जाय" और मिलने की पूछती हो, सो मेरे पास है ही क्या? मै खुद तुम्हारे दरवाजे घुटने टेक कर—'

एरण्ड—(स्वगत) 'घुटने है भी!'

कुमारी परशु—'भीख माँगती हूँ। पर यह तो बताओ, इस जगल मे तुम्हारे परिवार के कोई हैं?'

बेर—'हैं क्यो नही, पर दूर है बेचारे। यदि हम इकट्ठे होते, तो क्या इन निगोड़ों की बाते मै सुनने चली थी।'

कुमारी परशु—'दूर हों वे, मै उनसे मिला सकती हूँ।'

बेर—(आश्चर्य से) 'सच?'

कु० प०—(गम्भीरता से) 'बिल्कुल सच, यदि तुम्हारे सामने से चलने-फिरने लगूँ तो यह काम कल ही कर दूँ।'

बेर—'पहिले मेरी चाची को लाना वह बूढी है, उस महुए के पेड़ के बगल की सड़क पर है।'

कु० प०—'ज़रूर!'

बेर—'फिर मेरे बेटे-बेटियों को बुला देना, वे यहाँ से तीन मील पर नासगाँव मे एक महन्त के दरवाज़े पर है।'

कु० प०—'ज़रूर! ज़रूर!'

बेर—'तो बहन एकाध को लाकर बता दो, तो मै तुम्हे मदद अभी देती हूँ।'

कु० प०—'अजी ज़रा सी मदद पर इतना अविश्वास। मैंने कह न दिया कि मदद के बिना मुझसे चला नही जाता। कहती हो तेल फिर ले जाना पहिले अपने बेसन के भजिये खिला दो। अच्छा अब उस मसलहत का तंत देख आऊँ।'

बेर—'नही मत जाओ बहिन।'

कु० प०—'तो क्या करूँ?'

बेर—'बहिन मुझे भय यह है कि कही मुझ पर कोई आफ़त तो न आ जायगी।'

कु० प०—'मै तो तुम्हारे परिवार भर को इकट्ठा कर देने को कहती हूँ जिससे तुम्हारा बल बढ जाय। कहो तो मै भी तुम्हारी ही छाया में धूनी रमाती रहूँ।'

(दूर से पीपल की आवाज़)

पीपल—'कुमारी परशु चलो फैसला सुन लो।'

कु० प०—'जाती हूँ, सुनूँ तो क्या कहते है।'

बेर—'जाओ मै भी खड़ी सुनती हूँ, पर तुम मानना मेरी बात।'

कु० प०—'अच्छा' (मसलहत मे पहुँच कर) 'कहिए!'

आम—'मै अपनी डाली देता हूँ।'

पीपल—'मैं अपनी शाखा देता हूँ।'

एरण्ड—'हम भी प्रस्तुत है।'

पलाश—'हमारा सलाम बाई साहब।'

शिरीष—'फलें तब एकाध फूल मैं भी दे दूँगा।'

बबूल—'हम कुछ नही दे सकते।'

जामुन—'मैं बबूल साहब की आज्ञा से बाहर नही।'

इमली—'मैं खुद तुम्हारी मदद चाहती हूँ, वह यह कि तुम इस वन्य-प्रदेश पर कृपाकर यहाँ पर किसी को छेड़े बिना चली जाओ।'

पलाश—'बडी कृपा होगी।'

शिरीष—'साधु साधु!'

कु० प०—'यह फैसला कहाँ हुआ? कितनी मत भिन्नता है।'

बेर—(दूर से) आम दादा! कहो तो मै दे दूँ।'

आम—'नेकी और पूछ-पूछ, देदो बहिन।'

पीपल—'शुभस्य शीघ्रम्।'

जामुन—'अरे क्यो यह 'अव्यापारेषुव्यापार'?' (बेर एक डाली देती है)

कु० प०—'धन्यवाद।'

इमली—'देखो बहिन विश्वासघात न हो।'

आम—'और कोई तकलीफ़ मत पाना, ज़रूरत पड़े आ जाना।'

बेर—'बहिन इनकी क्रूरताये भूल मत जाना।'

कु० प०—'मै चलती हूँ। प्रणाम!'

बेर—बहिन मैं पुकारूँ तब आ जाना। क्या कह कर पुकारूँ, कोई सीधा नाम नही है क्या? यह अटपटा नाम तो लिया नही जाता।'

कु० प०—मुझे कुल्हाडी भी कहते है।'

सब वृक्ष—अरे यही है, क्या कुल्हाड़ी, इसे तो जंगल की शत्रु कहा जाता है।'

बेर—'अच्छा, यह नाम तो मैं ले सकूँगी।'

कोलाहल

कुल्हाड़ी—(एक दूर के फेफर से) 'क्यों भाई, जरा तुम्हारे कन्धे पर चढ़ जाऊँ, यह बगल का बबूल लोगो को बहुत काँटे गड़ाता है। दुनियाँ कहती है उसे काट दो।'

फेफर—'बहिन मेरी डाले बचाना। चढ जाओ! काट दो।'

(कुल्हाडी चढकर उसे काट देती है, फिर फेफर को भी काटने लगती है।)

फेफर—'यह क्या करती हो, हाय! हाय! अरे बस करो मैं मरा।'

(इस तरह कुल्हाड़ी मसलहत वाले झाड़ो को बचाकर, बहुत सा जंगल काट डालती है है। इसकी ख़बर जंगल मे होती है। वे सब चिन्ता करते है। उनके बाद कुल्हाडी बासो के पास जाती है। और उन्हे काटने के लिये प्रस्तुत वे इस तरह बाते करते पाये जाते है।)

एकला—'यह तो सभी जंगल श्री-हत हुआ जा रहा है। जो किसी दिन नन्दन था, आज वह अफ्रीका का 'सहारा' हो चला।'

दूसरा—'क्या करे भाई यह नाश तो देखा नही जाता। इधर यह ग्रीष्म-ऋतु महोदय सुखाये हुये है तिस पर यह रोज का सर्वनाश! भगवान् ही बचावे।'

एकला—'एक उपाय है, इसके हाथों मरने के बजाय स्वयं प्राण न दे दे।'

दूसरा—'लो वह आ पहुँची।'

कुल्हाड़ी—'तुम्हारा नाम क्या है जी?'

एकला—'वश ।'

कुल्हाडी—'तुम्हारा काम क्या है ?'

दूसरा—'हम दुबले-पतले और गरीब है, यहाँ जंगल में हम इस समस्त हरियाले प्रदेश को दूर से देख कर आने वाली आपदा की खबर देते है ।'

कुल्हाडी—'और ?'

एकला—'यदि हमे कोई छेड़े तो हम, उसके फास गड़ा देते है । हमारे तीर शत्रुओ के प्राण ले लेते है, हम श्मशान तक पहुँचा कर छोड़ते है ।'

कुल्हाडी—'ओ हो ।'

(यह कह कर वह चोट करती है)

एकला—'सद्वंश जात हो, करतूत दिखाओ ।'

दूसरा—'धर्म पर चुपचाप प्राण दे दो भगवान देख रहे है ।'

एकला—'तो अन्तिम समय मे आओ मिल ले ।'

(दोनों मिले, दोनो की रगड से आग लग गई,
सग्रहीत सारी लकड़ियाँ जल गईं,
झाड़ भी जलने लगे । मसलहत
में चर्चा होती है)

आम—'बहिन बडा संकट आया ।'

पीपल—'धोखा विश्वासघात । 'कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने' ।'

शिरीष—'पापी कही के ! 'औषधि जान्हवी तोयं कहो' ।'

पलाश—'अरे दादा ! आखिरी वक्त है, लोग औरों के लिये बोलते है, हम अपने लिये बोल ले ।'

शिरीष—'क्या ?'

पलाश—(जोर से) 'रामनाम सत्य है।'

आप—'हाय रे परमेश्वर ! यह क्या है ?'

इमली—'यह है तुम्हारी उदारता का मधुर फल !'

परिणाम

(सब जगल जल गया। कुल्हाड़ी का बेट भी उसी के साथ जल गया। इसके बाद धीरे-धीरे कुदाली पहुँची। जले हुये किन्तु जडों में हरियाले झाडों में जोर की चर्चा फैल गई।)

जामुन—'हाय वह फिर आ पहुँची, अब की वह दूसरा रुप धर कर आई !'

आम—'हे भगवान रक्षा करो !'

पीपल—'ओ भु !'

पलाश—'यह क्या करते हो ?'

पीपल—'रक्षा के लिये गायत्री मत्र पढ़ता हूँ।'

पलाश—'थोड़ा परोपकार और कमालो।'

बबूल—'हमसे भिड़ने दो, हम जड़ में अटकालें निकलना मुश्किल हो जाय।'

कुदाली—'भाई मै तुम्हारे पास आई हूँ।'

इमली—(कुदाली से) 'मर दुष्टे' (सब वृक्षो से) 'इससे कोई न बोलो।'

जामुन—'गिरि जीह मुँह परउ न कीरा।'

कुदाली—'फोरे जोग कपार हमारा, भले कहब दुख रौरे लागा।'

खैर—'अरे चल यहाँ से रौरे की बच्ची।'

आम—'अजी सुनो क्या कहती है ?'

इमली—'तुम्हारा शेष भाग भी, नष्ट हो जाता तो अच्छा था।

बबूल—'मुझ से भिड़ो, मेरे पास आओ, तुम्हारे प्राण लूँ।'

पीपल—'पापाय पर पीड़नम्।'

कुदाली—'हाय मेरी कोई नही सुनता। कोई सहारा नही देता।

(एक कोने मे पडा हुआ डडे का बेट
बनाकर सबकी झिड़कियाँ और
गालियाँ सहते हुए कुदाली
जमीन खोदने लगती है)

पलाश का ठूँट—हुजूरवाला, यह दौरा किस लिये निकला ?'

इमली—'अब यहाँ क्या है, फकत कोयला!'

खैर—(क्रोध से) 'अपने मुँह मे लपेटिये।'

पीपल—'तुम कौन हो जी, तुम्हारा नाम क्या है ?'

कुदाली—'मेरा नाम कुदाली है, मै कुल्हाड़ी की बहिन हूँ।'

आम—राम, राम!'

बबूल—'यहाँ क्यो पधारी हो ?'

कुदाली—'मेरी बहिन के द्वारा किये गये अपराधों की क्षमा माँगने। अपराध का शक्ति के अनुसार बदला चुकाने और अपनी बहिन को मना कर वापिस ले जाने।'

पीपल—'साधु साधु! विष्णवेनम, काँटो मे भी मृदु मजु सुमन खिलते है।'

इमली—'यो नही कहती कि हमको जड़ से खोद बहाने!'

बाँस का ठूँट—'या कोई अपनी कौम का कारखाना खोलने क लिये हमारा बिलकुल सफाया करने ?'

कुदाली—'जो चाहो सो कहो भैया, मै अपने काम मे लगी हूँ !'

पलाश का ठूँठ—'लगी रहो ! तुम्हारे सर की कसम हमारी तकदीर की लालटेन का सब तेल जल चुका।'

पीपल—'मौन सर्वार्थ साधनम् !'

(कुदाली सारा जंगल खोदती है। खैर बीच ही मे कुदाली के बेट को तोड डालता है। इसके बाद वर्षा होती है। सारे जंगल में नये अंकुर फूटते है। सब हर्षित होते है। कुल्हाड़ी और कुदाली निराश होकर चली जाती है। इसके बाद उगे हुये नये अकुरो में चर्चा शुरू होती है।)

आम—'अहा श्याम घन बरसे, बरसे !'

जामुन—'बडे भाग, भाग हमारे फिर जगे। बड़ी बुरी दशा हुई।'

शिरीष—'यह दशा किसने की ?'

खैर—'जिसने बेट दिया।'

बबूल—'और जिसने बेट देने की सम्मति दी !'

जामुन—'जो हुआ सो हुआ।'

शिरीष—'और यह सुदिन किसकी कृपा का फल है ?

पलाश—'हमारे आम दादा की !'

इमली—'हमारे पूर्वजो की।'

खैर—'परमेश्वर की !'

पीपल—'घनश्याम शोभा धाम की !'

पलाश—(चिढकर) 'और उस सत्यानाश की बच्ची का सहारा लेना' (मुँह बना कर) 'घनश्याम शोभा धाम की।'

आम—'यह दुर्बल और गरीब बाँसों के पवित्र बलिदान का परिणाम है।'

कला का अनुवाद

पहिली मुकाकात में मैंने जाना, जैसे देवदूत मिल गया। खूब चर्चा सुन रक्खी थी। कुछ लोग प्रारंभ ही से प्रत्येक आदमी को खतरनाक और बेईमान मानकर चलते है। और ज्यों-ज्यो व्यक्ति अपने गुणो से अपनी श्रेष्ठता व्यक्त ही नहीं, सिद्ध करता जाता है, त्यों-त्यों वे उसकी बेईमानी के सौ नम्बरो मे से एक-दो के क्रम से नम्बर घटाते जाते है और ईमानदारी और गुणज्ञता के खाते, एक-दो ही के, श्रीगणेश प्रारभ करते है। कुछ लोग ऐसे होते है जो प्रत्येक नये आगन्तुक को सौ फीसदी ईमानदार 'मानकर' चलते है और ज्यों-ज्यों वह विश्वासघात या ख़राबी करता जाय, त्यो-त्यो उस बेई-मानी के खाते नम्बर शुरु करते और ईमानदारी के खाते से नम्बर घटाते जाते है। लोग ही तो ठहरे। पहिले जिक्र किये लोगों को 'बुद्धि-जीवी' और चौकन्ना कहते हैं, जिनके हानि उठाने का उनकी राय-आला मे कभी अन्देशा नहीं। और दूसरे प्रकार मे वर्णित 'भावना-प्रधान व्यवहारिक मूर्ख' कहे जाते है, जो आदर के साथ आगन्तुक का स्वागत करते हैं, और उससे अपना मन बिगाड़कर तथा अपने से

उसका मन फाड़कर, बिदा करते है। पहले लोग जीवन का सौदा करते है, जिसमें टोटे की जोखिम न उठानी पड़े। दूसरे लोग अपने को आगन्तुक के साथ बाजी पर चढा देते हैं, और दुखों और सुखो मे परस्परावलम्ब से परिस्थिति बदलने मे हार खा जाते है, तब ईमानदार साथी की तरह अपने और अपने साथी के गुण-दोषों का विवेचन करते है। किन्तु दुनिया तो न जाने किसने दुनिया ही की तरह बनाई है। एक नल मे चार टोटियाँ लगी हों साफ दीखनेवाली, तो एक नल पर सवर्ण और दूसरे पर हरिजन साथ-साथ पानी नही भर सकते है। किन्तु टोंटियाँ ज़रा दूरी पर लगाकर, दोनों को जोड़नेवाले नल पर मिट्टी या चूना डाल कर, उन्हे हमारी आँखों से ओझल कर दिया जाय और यदि उसके बीच मे और ओट कर दी जाय, तो फिर मजे मे उस नल के एक छोर पर ब्राह्मण और दूसरे पर चाडाल साथ पानी पी सकते है। शायद लोगों की माँग यह है कि धोखा दो, किन्तु स्पष्ट हमारी जानकारी मे कुछ न करो, वह जो हमें न भाये। किन्तु जिन्हे जीवन को दुकानदारी के सौदे-सट्टे के साथ नही चलाना, किसी कड़वाहट मे, गले से नीचे उतारने योग्य मिठास तो मिला सकते हैं, किन्तु अवसर-लोलुपता से, माँग पर मीठा देकर, अपने साथी का निश्चित मरण नही न्यौत सकते। ख़ैर।

हाँ तो, पहिली मुलाकात में वे देवदूत दीखे इसलिये नही कि उन्होंने अपने देवदूत होने का विज्ञापन किया हो, इसलिये भी नही कि उनके देवदूत होने के इतने उपकार विश्व पर बिखर रहे हों, कि उन्हें देखकर कोई भी उन्हे देवदूत ही कहता, यह बात भी नही कि उनके कष्ट सहन ने उनके शरीर को ऐसा तेजोमय और पारदर्शक बना दिया था कि आँखे चार होते ही देखने वाले की आँखें आँखों पर ठहरने के बजाय उनके चरणों पर ही ठहरे, और न यह कि अपने

चिन्तन के चरखे पर, हाथ कते, हाथ बुने वे इतने बारीक डोरे निकालते हैं—अनुभव और चिन्तन के ताने-बाने से बने—कि हमारी बुद्धि ललच उठे, अनुभव की रोमावली फूल उठे, और अन्तरिक्ष के अन्धकार मे चलती हुई आँखे अन्तश्चेतना और बहि प्रकाश पा जायँ, यह कुछ भी न था। केवल एक बात थी। हृदयवान् मानव मे मुग्ध को मानने और अस्पष्ट पर अपरिमितता का आरोप कर पूजने की जो कमजोरी है, वही प्रथम मिलन मे वन्दनीय कहने की जड में शायद विद्यमान थी। और इसीलिये जब वे आये, तब मैने किसी चिन्तक का यह विचार अपने सामने रखा—

"प्रभु आसमान के परे नही, वह तो उम्र के परे निवास करता है।" और धीरे से छाती जुडाली, दूर खडे-खडे ही।

कपाल चौडा था, और आँखे लाँबी-लाँबी। हजामत खूब अच्छी बनी हुई थी, किन्तु आँखो की गभीरता और आँखो की अस्तव्यस्तता कह रही थी कि अपने ध्रुवपथ मे सौदर्य को पनाह देने के लिये इस व्यक्ति के पास अवकाश नही है। कुरता खादी का था, धुला। परन्तु गले के दो बटन खुले हुये थे। कोट मटमैला-सा था, जिसका रग ही वैसा था। उसमे दो जेब बाहर और एक अन्दर था। दर्जी की सुघड़ता उसमें खर्व हुई थी, किन्तु पहिनने वाले का बेवडापन उसके ऐंचकबेचा लटकने से व्यक्त हो रहा था। टोपी थी खादी की, ऊन की, चाकलेट रंग की; किन्तु हाथ मे, सिर पर नही। तेल लगे किन्तु बिखरे और उलझे केश, श्यामल वेश; बातचीत करते समय रुख न मिलाने की आदत, बहुत थोड़े बोल, मानो उधार के हों। अथवा कालेकाले बदन पर चिपके लाल ओठों की ललाई के घिस जाने का डर हो। बातों मे, गले तक सारा बदन वक्ता की ओर किन्तु आँखे दीवार पर ऊगी घास पर, आविष्कारक की तरह कुछ खोजती-सी। प्रत्येक

शब्द मुस्कराकर बाहर निकले। हाथ मे, पन्तजी का 'पल्लव' और बायें हाथ की अनामिका मे, कीमती पत्थर लगी हुई एक सोने की अँगूठी।

चर्चा किसानों पर चल रही थी। और घटना के हर करुण अश पर श्रोता हाँ या ना कहने के बजाय, उसाँस लेते।

कि इतने ही मे पोस्टमैन ने जीने के नीचे से पुकारा—'बाबूजी!'

उनके साथ उनके प्रोफेसर भी थे। वे बिचारे उठे और दौड़े। पोस्टमैन से मेरी चिट्ठियाँ ले आये। इनकी आँखो मे भी उत्सुकता आगई।

मैंने सोचा, न जिसका मुँह बोले, न आँखे, उसका तो अन्तरग ही बोलता होगा। किन्तु 'होगा' कहकर ठहरने के लिये मानव-मन तैयार जब हो ?

उस दिन की बाते जिज्ञासु जैसी थी। मैं बोलता गया। वे चुप सुनते रहे।

× × ×

तीन महीने पश्चात्— मैं अपनी एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर चुका था और कनवोकेशन के अवसर पर डिगरी का 'आडम्बर' लेने आया था। वे भी बी. ए. पास होगये थे और आज के सम्मिलन मे मेरे समानधर्मा थे।

बोले वे, मै चुप था। अपने आने का दिन, समय, कारण, ठहरने का मुकाम, उनके साथी, उस मुकाम पर होनेवाली तकलीफ, तकलीफ का कारण, इत्यादि की चर्चा के बाद मुझसे उन्होने मेरे ठहरने का मुकाम पूछा।

मैने कहा—'बैरिस्टर रामनन्दन तिवारी के बँगले पर।' इस बार मैं खूब मौन था।

वे फिर बोले। इस बार अपने साथियों की एक-एक कर आलोचना की। वे साथी मेरे अपने भी परिचित थे। आलोचना का पहलू कड़वे-से-कड़वा और मीठे से मीठा था। हाँ, हर आलोचना की समाप्ति पर यह 'ध्रुपद' किसी न किसी रूप मे जुड़ा मिलता—'यों आदमी तो बहुत अच्छे है, खूब परिश्रमी या देशभक्त या सेवापरायण या मन के उदार या अपने जनों पर प्राण देने वाले'—जैसा भी प्रसग होता।

मैंने अपने उत्तर के लिये केवल कुछ शब्द चुन रक्खे थे। वे थे—'अच्छा! अच्छा? कहाँ? कब? ओहो! किसने कहा? हाँ, हाँ हरगिज नही, मुझे मालूम नही, मुझे क्या करना है? खूब, ऐसा?'—शब्द और भी थे मगर उनकी जाति यही थी।

× × ×

एक बार वे यूथलीग के सभापति के नाते मिल रहे थे।

मैंने कहा—'बधाई सभापति जी!'

वे बोले—'आप भी मजाक करेंगे?

इसके बाद यूथलीग की चुनाई का किस्सा चला। मीठे शब्द, नम्र लहजा। शरमा-शरमा कर कहने की आदत। जिन-जिन लोगों ने उनके सभापतित्व को संकट मे डालने की कोशिश की, उनकी फेहरिस्त। किन्तु आँखों की पुतलियों पर कुछ चमकता-सा पानी था जो मानों कहता था कि बात कलेजे के भीतरी हिस्से से आ रही है। किन्तु चौकन्नी उदासीनता, एक सजग लापरवाही साथ चल रही थी, जो प्रगट करती थी कि अपने खिलाफ की गई शरारतो के खिलाफ एक बेबसी और उपेक्षा के सिवा इनके पास कुछ नही है।

× × ×

दो साल पश्चात्—

देश मे प्रमुख युद्ध चल रहा था। गरीब और अमीर सब जेल जा रहे थे। हर चीज का अपना मौसम था। जेल जाना भी हमारे राष्ट्र मे इतने बडे पैमाने पर आया कि उसने एक मौसम बना दिया।

एक शहर के बाज़ार में लगभग ३०० आदमी गिरफ्तार कोतवाली ले जाये जा रहे थे। तमाशबीनो से भी रहा न जाता था। समाज मे जैसा कि एक नामी लेखक ने लिखा था, ऐसे लोग होते है, जो सभा मे जाये तो सभापति होना चाहे, बारात मे जायँ तो स्वय दूल्हा बनने की और श्मशान मे श्मशान के जुलूस मे, उनकी ख्वाहिश होती है कि लोग रोवे तो उनके नाम पर और जलाये या दफनाये तो उन्ही को। दूसरे कुछ लोगो को कुछ नई चीज जानने का शौक होता है, चाहे वह जेल-जीवन ही क्यो न हो, यदि वह बिना नैतिक गुनाह किये मिले। तीसरे होते है जो सोचते है कि बिना व्यवहारिक सेवा किये, यदि देश-भक्तों के आस-पास पड़ी रस्सी को अपने हाथ मे बाँध लेने से सीधे मातृभूमि के उद्धारक का पुण्य मिलता हो तो क्यो छोड़ा जाय। चौथे अपने दुकानों और अटारियों पर होते है। वे देखते है कि धन और कीर्ति की दुकानदारी को अधिक सफलता से चलाये जाने के लिये भविष्य मे जेल-जीवन एक रामबाण नुसखा होगा। वे अटारियो से उतर कर जेलखाने की हथकड़ियाँ उसी तरह पहिन लेते है, जैसे किसी बडे आदमी की शादी में अपना सबसे अधिक बड़प्पन जताने के लिये हीरो का हार या कीमती रिस्टवाच पहिनी जाती है। छठवें वे होते है जो सोचते है कि आज तक तो देशभक्ति का जोत जोता, आज जेल न गये तो लोग हँसेगे, अतः चल पड़े

कानून-भग के रूप मे आराम-भंग की ओर। इनमे कुछ ग़रीब वे भी होते है, जो जेल मे दोनो जून भोजन पा लेते है, किन्तु बाहर संस्थाओं और नेताओ की पूरी गुलामी करने के बाद भी, उपवासो के वेतन पर, देशभक्ति की ऐसी प्रथा जारी रखते है। किन्तु वे नक्षत्र, देशभक्ति के वे सितारे होते हैं जिनको तपस्याओ के आस-पास ये गरजमन्द और अलगर्ज उपग्रह लटकते रहते है। उस समय इतने जोर से गिरफ़तारियाँ थी कि सत्याग्रह के दिनों खादी पहिनकर नागपुर का टिकट लेना नागपुर के अंजनी जेल के सन्तरी को अपने आने के लिये दरवाजा खुला रखने के लिये न्यौता भेजना था। मौसम ऐसा अच्छा था कि विवाहो के बाजे वाले अपने बिगुल और अपने ढोलो पर—"आजादी के दीवानों का दीवाना भगतसिह" गावें, प्रायमरी स्कूल की प्रथम श्रेणियो मे बच्चे एकत्र होकर "झण्डा ऊँचा रहे हमारा" का खेल खेले, मजिस्ट्रेट लोग, समाज के उत्साह से घबराकर, उनकी नजरो से गिर जाने के डर से जेलो मे देशभक्तो के मुकदमे करे, व्यापारी विलायती कपडा स्वदेशी बता कर बेचे, रेलवे के बाबू गाँधी-टोपी पहने, बिना टिकट आवारो को बिना कुछ कहे और बिना कुछ लिये बाहर निकल जाने दें, पुलिस वाले साहब के सामने हथकड़ी बाँधे और अकेला पाकर कैदी को सलाम करे, ताँगेवाले चार आने की मजदूरी मे सफेद टोपी वालों से दो आने पाकर चुप रह जायँ। फूलकी मालाये शौकीनों को मिलनी मुश्किल हो गई थी। वे देशभक्तों से जब बचे! ठीक इसी मौसम मे जब कि मै एक विश्वविद्यालय में प्रोफेसर था, मैंने एक मासिक-पत्र उठाकर पढ़ा। मुखपृष्ठ पर एक कविता स्फुलिग शीर्षक थी। उनमे मरनेवाले रणवीरों का गान था। नीचे नाम था—'अमरचन्द्र श्रीवास्तव' कविता क्या थी मानों—शब्दों ने भाषा का सारा तेज पा लिया था। उसमें आग थी,

अंगारे थे, मौत थी, लय थी। एक ही महीने पश्चात् मैंने फिर एक समाचार पढा लिखा था, उक्त कविता छापने के कारण उस मासिक-पत्र से 'दो हजार की जमानत ली गई'। इस समय मेरे मन मे अपने 'तरुणमित्र' के प्रति फिर अनुराग जागा। ये वे ही थे। मैंने ढूँढा नही कि वे कहाँ है और क्या करते हैं। पक्तियो में अंगारे बरस रहे हों, वह उस मौसम मे कहाँ हो सकता है, मौसम के फलो को बेचने वाले कुँजडे भी कह सकते थे।

इस घटना के तीसरे रोज़ मुझे एक निमत्रण-पत्र मिला। वह दीवानचन्द्रजी श्रीवास्तव का था। उनके पुत्र अमरचन्द्र श्रीवास्तव एम० ए० की शादी का आमंत्रण था। एक डिपुटी साहेब के यहाँ बारात जाने वाली थी।

मैंने उसी डाक के अख़बारो पर नजर डाली। भिन्न-भिन्न शीर्षको के नीचे जेल जाने और सजा पानेवालों के नाम और गुणो (अंको) से कालम भरे हुये थे। मै फिर उठा, और वह मासिक-पत्र उठा लाया जिसमें कविता छपी थी! फिर आमंत्रण-पत्र पढा। फिर अख़बार को देखा। एक विचित्र रामायण बन रही थी जिसमे काण्ड पर काण्ड अलग-अलग नजर आ रहे थे। मैंने सोचा, हो-न-हो यह शादी उक्त राष्ट्रीय कवि की मर्ज़ी के ख़िलाफ हो रही होगी। या फिर वह कवि कोई और होगा। बारात मानिकपुर से ख़ागा जा रही थी। प्रयाग से मै भी साथ हो लिया। स्टेशन पर पहुँचते ही अमरचन्द्र मिले। बड़े प्रेम से! उनके हाथ मे कटार थी, अंगुलियों में अँगूठियाँ, हाथों मे मेंहदी, ओठो पर पान की लाली, बदन से इत्र की बू आ रही थी और चवँर और पँखे नाइयो के पास ीख पड़े। मैंने मानों थाह सी लेते हुये प्रणामो के आपस मे बाँधने-खोलने के

बाद 'स्फुलिग' रचना पर अमरचन्द्र को बधाई दी। वे बोले–'आपकी कृपा है। टूटा-फूटा लिख लेता हूँ। यो मुझे आता ही क्या है।'

मैने कहा—'वाह क्या हृदय पाया है। कविता मानो वह उभाड है, जो रोके न रुके। थमाये न थमे।'

वे बोले—'आपका बिस्तरा कहाँ है? यही इसी डिब्बे में नीचे वाले गद्दे पर आ जाइये।'

मैं आ गया।

विवाह मे मै दो दिन रहा। रोज अख़बार देखता। जहाँ शादी हो रही थी, उस गाँव में भी पुलिस ने उसी दिन 'लाठी-चार्ज' किया था। किन्तु शादी बहुत धीरे-धीरे होती चली जा रही थी और औरतो के गीतों और मर्दो के मजाको मे अमरचन्द्र ऐसा रस ले रहे थे, मानों वे किसी और लोक के नही सिर्फ इसी लोक के जीव है। तीसरे दिन मै चल दिया। रह-रहकर अमरचन्द्र से मै कुछ पूछना चाहता था, किन्तु रग मे भंग न हो इस भय से मैने नही पूछा।

मैने वकालात पास करली थी और एक रियासत मे आगया था। क्योंकि हम यही के रहने वाले है, अतः वही वकालत करना था। एक दिन कर्म-धर्म-संयोग से मुझे नजदीक की रियासत मे एक डाके के मुकदमे में मुलजिमों की ओर से जाना पड़ा। उन दिनों भी वही मासिक-पत्र मेरे हाथ मे था और उसमे 'सच्चा कौन?' इस शीर्षक की कहानी छपी हुई थी। इसीलिये मुझे पढने का लालच हुआ क्योंकि वह कहानी अमरचन्द्र की लिखी हुई थी। बहुत मस्त कहानी, बडी बोलती सी भाषा, बड़ा गयन्दगामी प्रवाह, कहानी में मातृभूमि के लिये सूली पाने वाले एक तरुण का सजीव चित्रण था। आँखों में आँसू आगये।

अदालत में सरकारी गवाह एक के बाद एक आ रहे थे। मैं और मेरे साथी चार और उनसे जिरह कर रहे थे। मालूम हुआ कि मामला डाके का न होकर षड़यंत्र का है। मैंने खूब सावधानी से जिरह करना शुरू किया।

जब अपने गवाह न० ५ को बुलाने के लिये सरकारी वकील ने पुलिस के डिस्ट्रिक्ट सुपरिंटेन्डेन्ट से कहा, तब मैंने देखा कि वे है 'अमरचन्द्र श्रीवास्तव'। वे सिर पर ग्रेजुएट की फूगेदार टोपी लगाये हुये थे। मैंने देखा वे खूब सावधान और निडर थे और कह रहे थे षड़यंत्र बुरी चीज़ है, वे षड़यंत्रकारियों को जानते हैं उनके पास पिस्तौल देखी है, वे परम राजभक्त है, उनके पिता और उनके ससुर भी राजभक्त है, वे एक कालेज मे अध्यापक हैं, अमुक अभियुक्त उनके यहाँ आता-जाता था, उन्होने उसे मना भी किया, उन्होंने पुलिस को सूचना दी थी क्योंकि उन्हे पता चल गया था कि अभियुक्त गुनाह करने पर उतारू है। मैंने जिरह शुरू की और उन्हें जवाब देने मे जरा भी तकलीफ नही हुई। न आँखों में वह शर्म थी, न मुँह पर वह उदासीनता, न अपने प्रति वह लापरवाही। मै उनसे सब बातें ईमान से कहलवाने के लिये उनके हाथ मे गीता दे ही रहा था कि मेरे पीछे से तड़ से एक गोली चली और अमरचन्द्र के सीने में जा लगी।

उनका तड़पता हुआ शरीर पुलिस ने उठाकर चट से मोटर पर रक्खा और वे शायद अस्पताल चले गये।

पिस्तौल छोड़ने वाले युवक ने आत्मसमर्पण कर दिया। वह था उन्ही का चचेरा भाई गोपालचन्द्र, जो दर्शकों में खड़ा मुकदमा सुन रहा था।

उसी दिन शाम को मदनमोहन पार्क में श्री अमरचन्द्रजी के निधन पर शोक-सभा हुई। तक़दीर की बात कि मुझे भी वहीं सभापति होना पड़ा। जब स्वाभाविक सहानुभूतिवाले और कृत्रिम आँसुओंवाले दोनों प्रकार के वक्ता बोल चुके, तब मैंने सभा समाप्त करते हुये एक वाक्य यह भी कहा—'कला जीवन से अपना अनुवाद माँगती है। जो दे सकते हैं, उन्ही की जीवन-छाया, इतिहास के नाम से तिथि-ग्रन्थों मे और प्रेरणा के नाम से कृति-ग्रन्थों मे पड़ी रह जाती है।'